• वर्ष ६६ • अंक १० • मूल्य ₹ २०

मई (द्वितीय) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

महान् समाज सुधारक, आर्य समाज के संस्थापक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्विजन्म शताब्दी समारोह की तैयारी हेतु परोपकारिणी सभा के सदस्यों व विद्वानों की बैठक

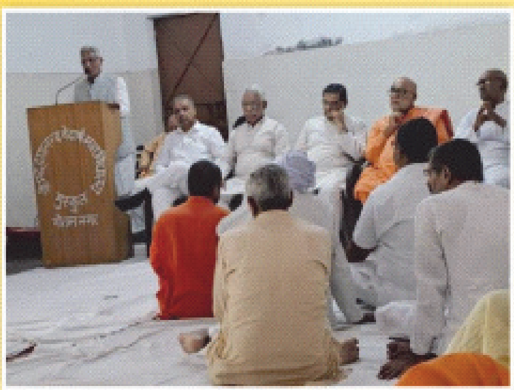

बैठक को संबोधित करते जस्टिस सज्जन सिंह कोठारी।

परोपकारिणी सभा के प्रधान ओममुनि।

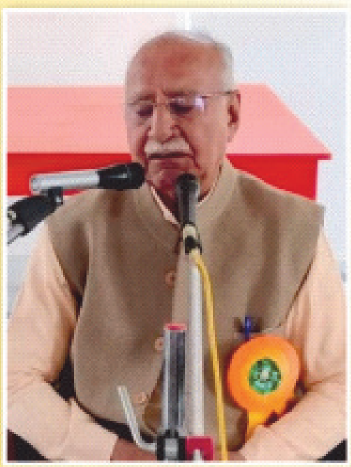

परोपकारिणी सभा के मंत्री श्री कन्हैयालाल आर्य।

परोपकारी सभा के संरक्षक डॉ. सुरेन्द्र कुमार।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

वर्ष : ६६ **अंक** : १०

दयानन्दाब्द: २००

विक्रम संवत् - वैशाख शुक्ल २०८१

कलि संवत् - ५१२५

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२५

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

मई द्वितीय, २०२४

अनुक्रम

०१. अजनबी	सम्पादकीय	०४
* प्रवेश सूचना		०५
०२. यज्ञिय व्यवहार से पर्यावरण...	प्रो. नरेश कुमार धीमान्	०६
०३. मैं आजन्म जिनका ऋणी रहूँगा	प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. नव वर्ष १ जनवरी को नहीं चैत्र...	श्री कन्हैयालाल आर्य	१६
०५. वेद पर्यटन	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	१९
०६. महर्षि दयानन्द : जीवन परिचय	प्रो. नलिनी पारीक	२४
०७. निवेदन		२८
०८. योग-ध्यान स्वाध्याय शिविर		२९
०९. आर्यवीर एवं आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर		३०
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३१
१०.संस्था की ओर से....		३२
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

*'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।*

अजनबी

सड़क पर चलते एक व्यक्ति ने सड़क किनारे बने एक स्थान से आती हुई ध्वनि/आवाज को सुना। इसे सुनकर वह ठिठका और कुछ क्षण रुक कर सुनता रहा। मन में विचार आया कि चलकर देखता हूँ, कि क्या चर्चा हो रही है? अन्दर जाकर बिछी हुई दरी के कोने पर बैठ गया और बैठकर चर्चा सुनता रहा। चर्चा की समाप्ति पर प्रसाद ग्रहण कर सभी अपने - अपने गन्तव्य की ओर चल पड़े। जाते समय कुछ सज्जन चर्चा को लेकर स्वमत भी प्रकट कर रहे थे। इसमें वक्ता और वक्तव्य के विषय में होती चर्चा अजनबी - आगन्तुक को कुछ अरुचिकर लग रही थी, क्योंकि वह जिन शब्दों को सुनकर आकृष्ट होकर अन्दर आया था, उसी वक्तव्य पर होती टिप्पणियों को सुनकर वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा था कि उसे जो वक्तव्य, आकृष्ट कर रहा था शायद वह उसे ठीक से समझ नहीं सका है, क्योंकि जो नियमित रूप से इन चर्चाओं को सुन और आयोजित कर रहे हैं, उन्हें निश्चय ही यथार्थ बोध होगा।

अजनबी कुछ क्षण खड़ा रहा, किन्तु किसी से कुछ पूछने का साहस न कर सका और आयोजकों ने भी उससे कोई संवाद करना उचित नहीं समझा, उसे लगा कि वह एक अवांछित और अजनबी ही है। इस प्रकार विचार करता हुआ। वह भी स्वाभिमत गन्तव्य की ओर अग्रसर हुआ।

कुछ समय पश्चात् एक दिन अचानक कहीं जाते हुए उसी अजनबी व्यक्ति ने देखा कि कुछ व्यक्ति एकत्रित हैं और वक्तृता हो रही है। वह पुन: ठिठक गया, स्यात् पूर्व के कोई संस्कार उद्‌बुद्ध हुए हों। वह सोचने लगा कि चलकर देखते हैं। जैसे ही वह अन्दर प्रविष्ट हुआ, उससे पूछा गया कि वह कहाँ से आया है? किस...का प्रतिनिधि है? उसके साथ अन्य कौन-कौन हैं? यहां तो...हो रहा है। यह सब सुनकर उसे लगा कि वह कहां आ गया है? उसे ज्ञात हुआ कि वह यह सब देख और सुन नहीं सकता, किन्तु उसे जानने की उत्कण्ठा हुई कि इसे देखना और जानना अवश्य चाहिए, भले ही वह छिपकर क्यों न हो?

अनमने भाव से उस स्थान से बाहर निकल वह जानने का प्रयत्न करता रहा।...कार्य की समाप्ति पर वह दोनों घटनाओं और सुने शब्दों पर विचार करते समय वह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि वह इसे किस प्रकार समझे और यदि व्याख्यात करना हो, तो किस प्रकार करे? कुछ समय तक वह इसी वैचारिक द्वन्द्व में रहा, क्योंकि दोनों ही स्थलों पर एक ही नाम अंकित था। इससे वह दुविधाग्रस्त हुआ कि क्या यह दोनों स्थल एक हैं यदि हाँ तो परस्पर विरोधी व्यवहार करते हुए एक किस प्रकार से हैं?

एक दिन अचानक वह एक महापुरुष की आत्मकथा पढ़ रहा था और पढ़ते हुए उसकी आंखों के सामने वह (पूर्व दृष्ट) दृश्य उपस्थित हो गए, किन्तु अन्दर एक द्वन्द्व प्रारम्भ हुआ कि क्या इन तीनों में साम्य है, तो किस प्रकार?

आत्मकथा में पठित घटना (सन् १८८२ में घटित हुई थी) है- ''उस दिन स्वर्गीय लाला मदनसिंह बी.ए. का व्याख्यान था। उनको मुझसे बहुत प्रेम था। उन्होंने व्याख्यान देने से पहले समाज मन्दिर की छत पर मुझे अपना लिखा व्याख्यान सुनाया और मेरी सम्मति पूछी। मैंने उस व्याख्यान को बहुत पसन्द किया। जब मैं छत से उतरा तो लाला साईंदास ने मुझे पकड़ लिया और अलग ले जाकर कहने लगे कि हमने बहुत समय तक इन्तजार किया है कि तुम हमारे साथ मिल जाओ। मैं उस घड़ी को नहीं भूल सकता। वह मेरे से बातें करते थे, मेरे मुंह की ओर देखते थे तथा मेरी पीठ पर प्यार से हाथ फेरते थे। मैंने उनको जवाब दिया कि मैं तो उनके साथ हूँ। मेरा इतना कहना था कि उन्होंने फौरन समाज के सभासद बनने का प्रार्थना पत्र मंगवाया और मेरे सामने रख दिया।

मैं दो-चार मिनट तक सोचता रहा, परन्तु उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे हस्ताक्षर लिए बिना तुम्हें जाने न दूंगा। **मैंने फौरन हस्ताक्षर कर दिए। उस समय उनके चेहरे पर प्रसन्नता की जो झलक थी उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। ऐसा मालूम होता था कि उनको हिन्दुस्तान की बादशाहत मिल गई है।''**

उपर्युक्त सन्दर्भ लाला लाजपत राय की आत्मकथा का है। पाठकों को स्मरण रहे कि लाला साईंदास आर्यसमाज लाहौर के मन्त्री थे।

वह अजनबी आत्मकथा के इस सन्दर्भ को पढ़कर मानो किसी अन्य लोक से पृथिवी पर एक झटके में गिरा हो। क्योंकि वह इन दृश्यों में तालमेल बैठाने का यत्न करने पर भी आंखों देखी को चाहते हुए भी भुला नहीं पा रहा है।

आर्यसमाज स्थापना के एक सौ पचासवें वर्ष में किसी अजनबी को अपनी ओर आकृष्ट करते समय क्या हमारी वाणी और आंखों में कोई आकर्षण दिखाई देता है? नए अनजान के प्रति क्या सहृदयता और आदर स्नेह का भाव कहीं दिखाई दे रहा है? यदि नहीं तो क्या इन बड़े-बड़े आयोजन के करने पर भी हम उस गौरव को पुनः स्थापित कर सकेंगे? क्या प्रत्येक आर्य से यह यक्ष प्रश्न उत्तर की अपेक्षा (शब्दों की अपेक्षा व्यवहार से) नहीं कर रहा है? कहीं ऐसा न हो कि तीसरी शताब्दी का अन्त आते-आते हम भी संसार के लिये अजनबी-अनजान न हो जायें?

- डॉ. वेदपाल

प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में सञ्चालित आर्ष गुरुकुल में प्रवेश प्रारम्भ हैं। वैदिक धर्म के उपदेशक-प्रचारक बनने के इच्छुक युवा प्रवेश हेतु शीघ्र आवेदन करें।

प्रवेश हेतु अविवाहित एवं आठवीं उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। भोजन एवं आवास की निःशुल्क सुविधा है। **सम्पर्क सूत्रः ८८९०३१६९६१**

प्रधान — **९९५०९९९६७९**

मन्त्री — **९९११९९७०७३**

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में कई वर्ष से संचालित आयुर्वैदिक चिकित्सालय का पुनः आरम्भ २६ अगस्त को किया गया है। यह चिकित्सालय सोमवार को छोड़ सप्ताह में ६ दिन मार्च से अक्टूबर सायं ५ से ७ बजे तक व नवंबर से फरवरी सायं ४ से ६ बजे तक दो घण्टे खुलेगा।

इसमें वरिष्ठ आयुर्वेद चिकित्सक की सेवा उपलब्ध है। चिकित्सा परामर्श व चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं। यदि आप अपने धन को इस पुण्य कार्य में लगाना चाहते हैं, तो परोपकारिणी सभा के बैंक खाते में सहयोग भेज सकते हैं। सहयोग भेजकर ८८९०३१६९६१ पर सूचित अवश्य कर देवें।

- मन्त्री

यज्ञिय व्यवहार से पर्यावरण का संरक्षण

[–प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी),
महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

[ऋषिः–परमेष्ठी प्रजापतिः, देवता–यज्ञः, छन्दः–स्वराड् जगती (४८+२), स्वरः–निषादः]

विषयः– पुनः स यज्ञः कीदृशोऽस्ति कथं कर्तव्यश्चेत्युपदिश्यते॥

(उक्त यज्ञ किस प्रकार का है, और किस प्रकार से करना चाहिये, इस विषय का उपदेश प्रस्तुत मन्त्र में किया गया है॥)

शर्मा॑स्य[1] वधू॑त॒ꣳ[2] रक्षो॒ऽव॑धूता॒ अरा॑त॒यो[3]ऽदि॑त्या॒स्त्वग॑सि[4] प्रति॒ त्वादि॑तिर्वेत्तु[5]। अद्रि॑रसि वानस्प॒त्यो[6] ग्रावा॑सि पृ॒थुबु॑ध्नः[7] प्रति॒ त्वादि॑त्या॒स्त्वग्वे॑त्तु[8]॥ –यजु० १.१४॥

[अनु०-१, नि०-११, उ०-१६, स्व०-११, प्र०-११ = ५० अक्ष०, क०मं०-४, पा०-८]

पदपाठः– शर्म॑। अ॒सि॒।[1] अव॑धूत॒मित्यव॑ऽ धूतम्। रक्षः॑।[2] अव॑धूता॒ इत्यव॑ऽ धूताः। अरा॑तयः।[3] अदि॑त्याः। त्वक्। अ॒सि॒।[4] प्रति॑। त्वा॒। अदि॑तिः। वे॒त्तु॒।[5] अद्रिः॑। अ॒सि॒। वा॒न॒स्प॒त्यः।[6] ग्रावा॑। अ॒सि॒। पृ॒थुबु॑ध्न॒ इति॑ पृ॒थुऽ बु॑ध्नः।[7] प्रति॑। त्वा॒। अदि॑त्याः। त्वक्। वे॒त्तु॒[8] ॥१३॥

[अनु०-१६, नि०-६, उ०-२२, स्व०-१७, प्र०-१२ = ७३ अक्ष०, अव०प०-३, ग०प०-०, स०प०-२४]

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
शर्म॑	सुखकारकं गृहम्॥ शर्म इति गृहनामसु पठितम्। (निघं०३।४)॥	हे मनुष्य! तुम सुखकारक घरों से युक्त
अ॒सि॒	भवति॥ अत्र सर्वत्र व्यत्ययः॥	होओ।
रक्षः॑	दुष्टस्वभावो जन्तुः॥	तुम्हारी राक्षसी वृत्तियाँ
अव॑धूतम्	दूरीकृतं विचालितम्॥	छिन्न-भिन्न हो जाएँ, दूर चली जाएँ।
अरा॑तयः	दानशीलतारहिताः शत्रवः॥	तुम्हारी अदानशीलता/अनुदारता
अव॑धूताः	दूरीभूताः॥	विनष्ट हो जाएँ।
अदि॑त्याः	पृथिव्याः॥ अदितिरिति पृथिवीनामसु पठितम्। (निघं०१।१)॥	तुम इस अखण्ड पृथ्वी की
त्वक्	त्वग्वत्॥	त्वचा की भाँति

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
असि	भवति॥	बन जाओ अर्थात् तुम्हारा प्रत्येक यज्ञिय व्यवहार इस पृथ्वी/पर्यावरण की रक्षा करनेवाला हो, पर्यावरण का विध्वंस न हो।
अदितिः	नाशरहितो जगदीश्वरः॥ अदितिरिति पदनामसु पठितम्। (निघं०५।५) अनेन ज्ञानस्वरूपोऽर्थो गृह्यते॥ अन्तरिक्षं वा॥	जिससे अखण्ड परमेश्वर भी
त्वा	तत् तं वा॥	तुम्हें उसी प्रकार
प्रति	क्रियार्थे पश्चादर्थे॥ प्रतीत्येतस्य प्रातिलोम्यं प्राह। (निरु०१।३)॥	
वेत्तु	जानातु ज्ञापयतु वा॥	जानें।
अद्रिः	मेघः॥ अद्रिरिति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१।१०)॥	मेघमण्डल
वानस्पत्यः	वनस्पतेर्विकारो रसमयः॥	वृक्ष-वनस्पतियों से समुद्भूत जल से युक्त
असि	अस्ति॥	हों।
ग्रावा	जलगृहीतो मेघः॥ ग्रावेति मेघनामसु पठितम्। (निघं०१।१०)॥	जल बरसाने में समर्थ घनीभूत मेघ
पृथुबुध्नः	पृथु विस्तीर्णं बुध्नमन्तरिक्षं निवासार्थं यस्य स पृथुबुध्नो मेघः॥ बुध्नमन्तरिक्षं बद्धा अस्मिन् धृता आप इति। (निरु०१०।४४)॥	विशाल अन्तरिक्ष में व्याप्त
असि	अस्ति॥	हों।
अदित्याः	अन्तरिक्षस्य॥	पृथिवी और अन्तरिक्ष की
त्वक्	त्वग्वत् सेविनम्॥	त्वचा बनकर, इनकी रक्षा करने का भाव
त्वा	तम्॥	तुझे
प्रति	उक्तार्थे॥	निरन्तर
वेत्तु	जानातु ज्ञापयतु वा॥ अयं मन्त्रः। (शत०१।१।४।४-७) व्याख्यातः॥ १४॥	बोध प्रदान कराता रहे।

तत्वबोध–

१. शर्म[1] , असि[2] – आवास या घर मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में से एक है। परमेश्वर उपदेश करते हैं कि मनुष्य के पास केवल घर होना ही पर्याप्त नहीं है। वह घर बनावट की दृष्टि से तथा अन्नादि सुख-साधनों की उपलब्धता की दृष्टि से भी सुखकारक होना चाहिए।

२. अवधूतम्[3] , रक्षः[4] – कोई घर अपने-आप ही सुखकारक नहीं हो सकता, उसके लिए मनुष्य को वैसा ही यज्ञिय व्यवहार भी करना पड़ेगा और पुरुषार्थ भी करना पड़ेगा। यज्ञिय-व्यवहार और पुरुषार्थ में सबसे बड़ी बाधा उसकी अपनी राक्षसी वृत्तियाँ होती हैं, जो उसे इनसे दूर ले जाती हैं। मनुष्य में भटकाव आ जाता है और जीवन दुःखमय हो जाता है। इसीलिए परमेश्वर का आदेश है कि यदि अपने घरों को सुखमय बनाए रखना चाहते हो तो अपनी राक्षसी वृत्तियों निरन्तर धूनते रहो, जिससे छिटक कर वे तुमसे दूर चली जाएँ।

३. अवधूताः[5] , अरातयः[6] – सुख का दूसरा हेतु है कि अपने पुरुषार्थ से जो भी अर्जित करो, उसमें भी तुम्हारी दानवृत्ति होना आवश्यक है, उदार होकर व्यवहार करना आवश्यक है। इसीलिए अदानशीलता और अनुदारता को भी अपने से दूर रखने का सदा प्रयास करते रहो।

४. अदित्याः[7] , त्वक्[8] , असि – जिस पर्यावरण में हम रहते हैं, यदि वह पर्यावरण सुरक्षित

---

१. शृणातीति शर्म गृहं सुखं वा। शॄ हिंसायाम् (क्र्यादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'सर्वधातुभ्यो मनिन्' (उणा० ४.१४५) इति मनिन् प्रत्ययः, 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा०६ .१.१९७) इत्याद्युदात्तत्वम्, ततः स्वरितः – शर्म ॥

२. अस् भुवि (अदादिगणः, परस्मैपदी) इति धातोर्लटि मध्यमपुरुषैकवचने सिप्-प्रत्ययः – अस् + सिप्। 'कर्तरि शप्' (अष्टा० ३.१.६८) इति शप्, तस्य च 'अदिप्रभृतिभ्यः शपः' (अष्टा० २.४.७२) इति लुक् – अस् + सि। 'तासस्त्योर्लोपः' (अष्टा० ७.४.५०) इत्यस्-धातोः सकारस्य लोपः – असि। सिपः पित्त्वात् सिप्-प्रत्ययोऽनुदात्तः, अतः धातुस्वरेणैवाद्युदात्तत्वम्, ततः स्वरितत्वं च – असि। संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'असि'॥

३. धूञ् कम्पने (स्वादिगणः उभयपदी) इति धातोर्निष्ठायां क्त-प्रत्ययः, कित्त्वाद् गुणाभावः – धूत। 'निष्ठा च द्व्यजनात् ' (अष्टा० ८.१.२८) इत्याद्युदात्तत्वम्, ततः परस्य स्वरितं च – धूतम्। 'अव'-उपसर्गः, 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' (फिट्० ८१) इत्याद्युदात्तः। 'गतिश्च'(अष्टा० १.४.६०), 'कुगतिप्रादयः' (अष्टा० २.२.१८) इति समासे, 'गतिरनन्तरः' (अष्टा० ६.१.२०५) इति पूर्वपद-प्रकृतिस्वरत्वेनाद्युदात्तस्वरसिद्धिः, स्वरितत्वमैकश्रुत्यं च, नपुंसके प्रथमैकवचने –अवधूतम् ॥

४. रक्ष पालने (भ्वादिः परस्मैपदी) इति धातोः 'सर्वधातुभ्योऽसुन्' (उणा० ४.१८९) इति बाहुलकाद् 'भीमादयोऽपादाने' (अष्टा० ३.४.७४) इत्यपादानेऽसुन् प्रत्ययः, अत्र च प्रमाणम् –रक्षो, रक्षितव्यमस्माद्, रहसि क्षणोतीति वा, रात्रौ नक्षत इति वा (निरु० ४.१८) इत्यनेनापादाने कर्त्तरि वाऽस्य व्युत्पत्तिः, तिर इवैतद्रक्षांसि इत्यैतरेयब्राह्मणे (२.७) ॥ 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा०६ .१.१९७) इत्याद्युदात्तत्वम्, ततः स्वरितः, नपुंसके प्रथमैकवचने – रक्षः॥

५. 'अवधूतम्' इव पुंसि प्रथमाबहुवचने – अवधूताः॥

६. रा दाने (अदादिः परस्मैपदी) इति धातोः 'अमेरतिः' (उणा० ४ .५९) इति बाहुलकादतिप्रत्यये प्रत्ययस्वरेणाद्युदात्तङ्क; 'रातिः'। रातिर्दानशीलः, न रातिरऽरातिः, तेऽरातयः। नञ्-तत्पुरुषसमासे 'तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' (अष्टा० ६.२.२) इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः, पूर्वपदे नञ्, स च 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ८०); इति सूत्रेणाद्युदात्तः; प्रथमाबहुवचनेऽपि जस्-प्रत्ययः 'अनुदात्तौ सुप्पितौ' (अष्टा० ३.१.४) इत्यनुदात्तः, अतएव 'अरातयः' इत्याद्युदात्तं पदम्॥

७. दो अवखण्डने (दिवादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'कृत्यल्युटो बहुलम्' (अष्टा० ३,३.११३) इति कर्तरि क्तिन्, 'द्यतिस्यतिमास्थामित्ति किति' (अष्टा० ७.४.४०) इतीकारादेशे– दिति। न दितिरदितिः, नञ्-तत्पुरुषसमासे 'तुल्यार्थतृतीयासप्तम्युपमानाव्ययद्वितीयाकृत्याः' (अष्टा० ६.२.२)

नहीं है; तो घर कितना ही सुख-साधन सम्पन्न क्यों न हो, वह जीवन के लिए सुखप्रद नहीं हो सकता। इसीलिए परमेश्वर का आदेश है कि मनुष्य को इस अखण्ड पृथ्वी के लिए सुरक्षा-कवच बनकर जीवन जीना चाहिए। उसे अपना प्रत्येक व्यवहार इस प्रकार का रखना चाहिए जिससे पृथ्वी का पर्यावरण संरक्षित हो; क्योंकि इस पृथ्वी का संरक्षित वातावरण ही मनुष्य के सुख का कारण बनता है।

५. प्रति[९], त्वा[१०], अदितिः, वेत्तु[११]– अदिति शब्द का यौगिक अर्थ है, अखण्ड। प्रसंग के अनुसार इसका अर्थ अखण्ड परमेश्वर, अखण्ड पृथ्वी, अखण्ड अन्तरिक्ष आदि हो सकता है। यौगिक अर्थ का यही सौन्दर्य है। परमेश्वर इस मनुष्य को प्रकृति के संरक्षक रूप में ही स्वीकार करना चाहता है, विध्वंसक रूप में नहीं। यही इसका तात्पर्य है।

६. अद्रिः[१२], असि, वानस्पत्यः[१३] – स्वास्थ्यकर पर्यावरण के लिए धरती का हरे-भरे वृक्षों, बहुविध वनपतियों से सम्पन्न होना आवश्यक है; मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को उतने अंश में नियन्त्रित करे, जिससे उसे इन धरती को वृक्ष-विहीन करने के लिए अपने हाथ न बढ़ाने पड़ें; क्योंकि जितने अधिक वृक्ष उतना अधिक मेघों से जल। वानस्पत्य अद्रि से तात्पर्य है

इति पूर्वपदप्रकृतिस्वरः, पूर्वपदे नञ्, स च 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ८०); इति सूत्रेणाद्युदात्तः, ततः उदात्तादुत्तरस्य स्वरितः, तदुत्तरस्यैकश्रुत्यं च, स्त्रियां षष्ठ्येकवचने – 'अदित्याः'॥

८. त्वचति संवृणोति मेदशोणितादिकमिति, इन्द्रियविशेषः । त्वच संवरणे (तुदादिगणः परस्मैपदी) + क्विप् । यद्वा, तनोति विस्तारयतीति । तनु विस्तारे (तनादिगणः उभयपदी) + चिक्। 'तनोतेरनश्च वः' (उणा० २.६३) इति चिक् अनश्च वः । तनोति विस्तृता भवतीति त्वक्, शरीरावरणं चर्म वल्कलं वा (उणादौ महर्षिदयानन्दवृत्तिः)। धातुस्वरेणैवाद्युदात्तत्वम्, स्त्रियां प्रथमैकवचने – त्वक्॥

९. 'प्रादयः' (अष्टा० १.४.५८), इति निपातसंज्ञा, 'निपाता आद्युदात्ताः' (फिट्० ४.१२) इत्याद्युदात्तत्वम्, यद्वा 'उपसर्गाश्चाभिवर्जम्' इत्यनेनाद्युदात्तत्वम्। तदुत्तरस्य स्वरितश्च – 'प्रति'॥

१०. 'त्वाम्' इति स्थाने प्रयुक्तम्, 'त्वामौ द्वितीयायाः' (अष्टा० ८.१.२३), 'अनुदात्तं सर्वमापादादौ' (अष्टा०८.१.१८) इत्यतः सर्वानुदात्तत्वमनुवर्तते– 'त्वा'॥

११. विद् ज्ञाने (अदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोर्लोटि प्रथमपुरुषैकवचने तिप्-शपौ, पित्त्वादनुदात्तौ, शपो लुक्, 'एरुः' (अष्टा० ३.४.८६) इत्युत्वम्– विद् + तु। 'पुगन्तलघूपधस्य च' (अष्टा० ७.३.८६) इत्युपधायाः गुणः, 'खरि च' (अष्टा० ८.४.५५) इति चर्त्वम्, धातुस्वरेणाद्युदात्तत्वम्, तदुत्तरस्य स्वरितत्वं च– 'वेत्तु'॥ संहितायां 'तिङ्ङतिङः' (अष्टा० ८.१.२८) इति सर्वानुदात्तत्वम् –'वेत्तु' ॥

१२. अद भक्षणे (अदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'आदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन्' (उणा० ४.६५) इति क्रिन्-प्रत्ययः, 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्' (अष्टा० ६.१.१९७) इत्याद्युदात्तत्वम्, तदुत्तरस्य स्वरितत्वं च– 'अद्रिः'। मेघो ह्यादित्यरश्मिभिर्भौमान् रसान् वर्षार्थमत्ति ॥

१३. वनतीति वनम्, बहुवृक्षयुक्तस्थानम् । वन् सम्भक्तौ (भ्वादिगणः परस्मैपदी) 'नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' (अष्टा० ३.१.१३४) इत्यच्-प्रत्ययः, 'चितः' (अष्टा०६.१.१६३) इत्यन्तोदात्तत्वं प्राप्तं, तत्प्रतिषिध्य नपुंसके 'नब्विषयस्यानिसन्तस्य'(उणा० २.३) इत्याद्युदात्तत्वे, ततः स्वरितत्वे प्रथमैकवचने – वन् + अच् = वनम्॥ पाति रक्षतीति पतिः । पा रक्षणे (अदादिगणः परस्मैपदी) इति धातोः 'पातेर्डतिः' (उणा० ४.५८) इति डति-प्रत्ययः, डित्वादभस्यापि टेर्लोपः, प्रत्ययस्वरेणाद्युदात्तः, पुंसि प्रथमैकवचने – पतिः॥ वनानां पतिः – वनस्पतिः, षष्ठी तत्पुरुषः। वनपतिशब्दावाद्युदात्तौ, 'पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्'(अष्टा० ६.१.१५७) इति पारस्करप्रभृतित्वात् सुडागमः, पुंसि प्रथमैकवचने– 'वनस्पतिः'॥ वनस्पतेर्विकारो वानस्पत्यः। 'दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः' (अष्टा० ४.१.८५) इति ण्य-प्रत्ययः, प्रत्ययस्वरेणैवान्तोदात्तः,

कि मनुष्य अधिक से अधिक वृक्ष लगाएँ जिससे मेघों में उतना ही जल-वर्षण का सामर्थ्य उत्पन्न हो।

७. ग्रावा[१४], असि, पृथुबुध्नः[१५] – ग्रावा का अर्थ है, जल से परिपूर्ण मेघ। पृथुबुध्न अर्थात् विशाल अन्तरिक्ष। विशाल अन्तरिक्ष जल बरसाने में सक्षम मेघों से घिरा हुआ हो, जिससे आवश्यकता के अनुसार समय पर ये मेघ बरसें। इस वर्षा से पृथ्वी पर अन्नादि की वृद्धि हो और मनुष्यादि का जीवन सुखमय हो सके।

८. प्रति, त्वा, अदित्याः, त्वक्, वेत्तु – यह साधारण सा मनोविज्ञान है कि जब कोई व्यक्ति अपने उद्देश्य के प्रति ही दिन-रात समर्पित रहता है, तो वह समर्पण ही उसकी उद्देश्य-प्राप्ति का मार्ग-दर्शन कराने लगता है। उसीसे बोध प्राप्त कर वह बड़ी सरलता से अपने उद्देश्य को पा लेता है। यही बात इस मन्त्रांश में हैं। अदिति अर्थात् पृथ्वी के अन्दर और बाहर तथा अन्तरिक्ष– सभी की त्वचावत् रक्षा का भाव मनुष्य के मन-वचन-कर्म में इतना तीव्र होना चाहिए कि वह तीव्र भाव ही उन्हें इनके संरक्षण का बोध प्रतिपल कराता रहे।

९. मन्त्र का निहितार्थ– मन्त्र में मुख्य बातें इस प्रकार हैं – १. मनुष्य के पास सुख-साधन सम्पन्न घर होना चाहिए। २. इसके पुरुषार्थ स्वरूप अपनी राक्षसीय वृत्तियों को उभरने नहीं देना चाहिए। ३. मनुष्य की वृत्ति सदैव यज्ञिय अर्थात् त्यागभाव वाली होनी चाहिए। ४. पर्यावरण के संरक्षण में ही उसका जीवन सुखमय हो सकता है, अतः उसके लिए प्रतिपल सजग रहना चाहिए। ५. यह संरक्षण का भाव इतना तीव्र होना चाहिए कि यह तीव्रभाव ही उसे उसका बोध कराता रहे।

१०. महर्षि दयानन्द का भावार्थ– महर्षि ने इस मन्त्र के तात्पर्य को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है– "ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि तुम लोग शुद्ध और विस्तारयुक्त भूमि के बीच में अर्थात् बहुत से अवकाश में सब ऋतुओं में सुख देने योग्य घर को बना के उस में सुखपूर्वक वास करो तथा उसमें रहने वाले दुष्ट स्वभावयुक्त मनुष्यादि प्राणी और दोषों को निवृत्त करो, फिर उसमें सब पदार्थ स्थापन और वर्षा का हेतु जो यज्ञ है, उस का अनुष्ठान कर के नाना प्रकार के सुख उत्पन्न करना चाहिये, क्योंकि यज्ञ के करने से वायु और वृष्टिजल की शुद्धि द्वारा संसार में अत्यन्त सुख सिद्ध होता है॥"[१६]

पुंसि प्रथमैकवचने, 'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'(अष्टा० ६.१.१५८), 'उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः'(अष्टा० १.२.४०) – वानस्पत्यः॥

१४. गॄ निगरणे (तुदादिगणः, परस्मैपदी) गिरत्युदकं वर्षार्थम्। 'अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते' (अष्टा० ३.२.७५) इति क्वनिप्-प्रत्ययः, तस्य पित्वादनुदात्तत्वे धातुस्वरेणैवाद्युदात्तः। छान्दस आडागमः ततः 'उदात्तस्वरितयोर्यणः स्वरितोऽनुदात्तस्य' (अष्टा०८।२।४) इति स्वरितत्वे प्राप्ते छान्दसमुदात्तत्वम्, पुंसि प्रथमैकवचने – 'ग्रावा'॥ यद्वा पृषोदरादित्वाद् 'ग्रा' आदेशः ॥

१५. प्रथ प्रख्याने (भ्वादिगणः आत्मनेपदी) इति धातोः 'प्रथिम्रदिभ्रस्जां सम्प्रसारणं सलोपश्च' (उ० १.२८) इति कु-प्रत्ययः । प्रत्यय-स्वरेणान्तोदात्तः – पृथुः॥ बध्नातीति बुध्नः। बन्ध् बन्धने (क्र्यादिगणः परस्मैपदी) 'बन्धेर्ब्रधिबधी च ' (उणा० ३.५) इति नक्-प्रत्ययः बुधादेशश्च, प्रत्यय-स्वरेणैवान्तोदात्तः – बुध्नः॥ बहुव्रीहिसमासे 'बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्'(अष्टा० ६.२.१) इति पूर्वपदस्वरत्वम्,– 'पृथुबुध्नः'॥

१६. द्र० – "ईश्वरेणाज्ञाप्यते मनुष्यैः शुद्धायाः सर्वतोऽवकाशयुक्तायाः पृथिव्या मध्ये सर्वेष्वृतुषु सुखदायकं गृहं रचयित्वा तत्र सुखेन स्थातव्यम्। तस्मात् सर्वे दुष्टा मनुष्या दोषाश्च निवारणीयास्तत्र सर्वाणि साधनान्यपि स्थापनीयानि। तत्रैव वृष्टिहेतुर्यज्ञोऽनुष्ठाय सुखानि संपादनीयानि। एवं कृते वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारा जगति महत्सुखं सिध्यतीति॥" –यजु० १.१४ पर महर्षि दयानन्द के भाष्य में संस्कृत भावार्थ॥

मैं आजन्म जिनका ऋणी रहूँगा

प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

जिन्होंने देश सेवा-समाज सेवा में अपना जीवन बिताया उनमें से अनेक महानुभावों ने जनहित में किये गये अपने छोटे-बड़े श्रेष्ठ कार्यों के वृत्तान्त अथवा कहानियाँ लिखी हैं, परन्तु विश्व इतिहास में ऐसे भी अनेक लोकसेवक मिलेंगे जिन्होंने अपना मार्गदर्शन करने वाले पथ प्रदर्शकों, सुपथ पर ले जाने वाले कृपालु पुण्यात्माओं के प्रेरक जीवन पर बहुत कुछ लिखा है। मैंने भी अपने दीर्घकालीन सामाजिक जीवन में बहुत से जनसेवकों, परोपकारी महापुरुषों की छत्रछाया अथवा संगत से बहुत कुछ सीखा व पाया है। उनके जीवन के कुछ प्रेरक प्रसंग लोक सेवा के मार्ग पर चलने वालों के लिए यहाँ देकर कृतज्ञता का प्रकाश करना मेरे लिए अत्यन्त आनन्ददायक होगा।

पुराने आर्यपुरुषों की विशेषता - अल्पज्ञ जीवन में अल्पज्ञता के कारण कुछ दुर्बलतायें तो होती ही हैं, परन्तु अधिकांश पुराने अग्रणी पुरुषों में मैंने यह एक विशेष गुण देखा कि वे नये-नये उत्साही युवकों को समाज सेवा के लिये कुछ बनने की प्रबल प्रेरणायें देकर प्रोत्साहित किया करते थे। नये-नये समाजसेवकों के निर्माण की चिन्ता केवल उपदेशकों और विद्वानों को ही नहीं थी। आर्यसज्जनों के कई अधिकारी तथा बहुत से बड़े-बड़े नेताओं को भी निष्काम, कर्मठ तथा समर्पित लगनशील समाज सेवकों को प्रशिक्षित व प्रेरित करने की ललक और आग देखी गई।

यह सन् १९५८ की घटना है। मैं आर्य स्कूल नरवाना में अध्यापक था। अपनी धर्मधुन व जोश के कारण सारे आर्यजगत् में मेरा नाम था। तब कक्षा में पढ़ाते समय स्कूल का सेवक मुझे श्री महाशय कृष्ण जी का मेरे नाम लिखा एक भावनापूर्ण पत्र दे गया। मैं पत्र को देखते ही जान गया कि यह पूज्य महाशय कृष्ण जी का पत्र है। उनके पत्र मुझे यदाकदा प्राप्त होते रहते थे।

उस पत्र में लिखा था कि अब नये युग में आर्यसमाज को ऊँची योग्यता के समाजसेवी युवक चाहिएं। आप एम.ए. अवश्य कर लें। यह भी वह जानते थे कि मेरी इतिहास विषय में रुचि है सो लिखा कि चाहे इतिहास विषय में एम.ए. कर लो अथवा हिन्दी में चाहो तो उसमें कर लो। मैंने तत्काल पत्र पढ़कर इतिहास विषय में एम.ए. करने का निर्णय कर लिया। उनकी प्रेरणा से कुछ ही मास में मैंने एम.ए. कक्षा में प्रवेश पा लिया। पंजाब विश्वविद्यालय इतिहास विभाग में डॉ. हरिराम जी, डॉ. बुद्धप्रकाश जी की कोटि के नामी इतिहासज्ञ मेरे गुरुजन थे। वीर शिरोमणि भगतसिंह के अन्त समय के साथी (सबसे छोटी आयु के अवयस्क क्रान्तिकारी), प्राध्यापक प्रेमदत्त जी तथा डॉ. सेठी भी वहाँ मेरे गुरु थे। यहाँ प्रसंगवश यह भी बताना आवश्यक व उपयोगी रहेगा कि अवयस्क होने के कारण ही क्रान्तिकारी प्रेमदत्त को तब फांसी दण्ड न दिया गया।

महाशय जी की सीख के कारण ही मैं इतिहास विषय की हिन्दी साहित्य तथा आर्यसामाजिक साहित्य में सर्वाधिक पुस्तकें लिख पाया। वैसे मैं कुमार अवस्था में ही दैनिक प्रताप में महाशय जी के सम्पादकीय पढ़-पढ़कर मन ही मन में एक सशक्त लेखक बनने के स्वप्न लेने लगा सो यहाँ यह दोहरा कर लिखने की आवश्यकता तो नहीं कि कुमार अवस्था के इन संस्कारों के कारण भी वह कुछ बन पाया। जो मैं आज हूँ अतः मैं महाशय कृष्ण जी का अत्यधिक ऋणी हूँ।

पूजनीय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज - एक बार पूज्य पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने स्वामी जी के विषय में लिखा था कि उनमें दूर तक देखने व गहरा सोचने की शक्ति थी। वे दिनरात आर्यसमाज की उन्नति

के लिए सोचते थे। सम्पूर्ण आर्यजगत् पर उनकी दृष्टि केन्द्रित रहती थी। आर्यसमाज की सेवा में संलग्न सारे आर्यजगत् के छोटे-बड़े सेवकों की गतिविधियों तथा प्रवृत्तियों का उन्हें ज्ञान रहता था। इस दृष्टि में उन जैसा उस युग में कोई विरला ही गुणी महात्मा व नेता होगा।

एक इतिहास लेखक ने उन्हें अपनी पुस्तक हमारा राजस्थान समीक्षा करने के लिए भेंट की। तब स्वामी जी बहुत रुग्ण थे। यह आपके जीवन के अन्तिम दिनों की बात है। आपने वह पुस्तक अपने शिष्य प्रिं. रामचन्द्र जी को भेंट करते हुए उस पुस्तक में वर्णित सन् १८५७ के विप्लव से महर्षि दयानन्द को जोड़ने की कल्पना की है। आपने जावेद जी को कहा, "इसे पढ़कर इस विषय में युक्ति, तर्क व प्रमाण से यथार्थ प्रकाश डालें। भावुक होकर कुछ मत लिखना। ऋषि दयानन्द जी के जीवन पर लिखते हुए सत्य व तथ्य का हनन नहीं होना चाहिए।"

इसके कुछ ही दिन के पश्चात् मैं दीनानगर स्वामी जी के दर्शन करने तथा उनके स्वास्थ्य का पता करने गया। मेरे लेख आप पढ़ते ही रहते थे सो उन्हें मेरी सोच, लगन व प्रवृत्तियों का पूरा-पूरा ज्ञान था। ऊपर यह बताया ही जा चुका है कि आर्यजगत् के प्रत्येक सेवक पर उनकी दृष्टि रहती थी। मुझे मिलते ही अपने स्वास्थ्य की बात छोड़कर मिशन की चर्चा छेड़कर कहा, "मैं जावेद जी को 'हमारा राजस्थान' पुस्तक समीक्षा के लिए दे आया हूँ।

आप भी उसमें सन् १८५७ के विप्लव विषय पर महर्षि दयानन्द की संलिप्तता पर गम्भीर विचार कर यथार्थ इतिहास पर कुछ लिखें। भावुकतावश कुछ मत लिखना।" जावेद जी का और मेरा भी एतद्विषयक लेख तभी पत्रों में छप गये। मेरे लिए आश्चर्य की बात तो यह थी कि स्वामी जी ने जो कार्य एक अनुभवी विद्वान् लेखक को सौंपा वही इस उदीयमान युवा लेखक को सौंपा गया। यही तो उनकी दूरदृष्टि, सूझ तथा व्यक्ति के निर्माण पर ध्यान केन्द्रित होने का ठोस प्रमाण है। वे मनुष्यों के अद्भुत पारखी थे।

आज आर्यसमाज के इतिहास तथा महर्षि दयानन्द के जीवन के किसी भी पहलू पर मेरे चिन्तन, दृष्टिकोण तथा विचार की कोई भी उपेक्षा नहीं कर सकता। यह स्वामी जी महाराज की उपरोक्त सीख, दीक्षा व देन का मधुर फल है अत: मैं स्वयं को उनका ऋणी मानता हूँ।

पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय - पूज्य पण्डित जी ने सृष्टि के लम्बे इतिहास में वैदिक सिद्धान्तों पर जितना कुछ लिखा है, इतना दूसरे किसी भी गुणी, ज्ञानी, मुनि महात्मा ने नहीं लिखा। एक-एक वैदिक सिद्धान्त पर बीस-बीस मौलिक व गम्भीर लेख लिख डाले और प्रत्येक लेख दूसरे से न्यारा मिलेगा। इस महान् विभूति के छोटे-छोटे ट्रैक्टों से लेकर बड़े विशालकाय ग्रन्थों पर अपवाद रूप से ही आठ-दस ग्रन्थों पर विद्वानों की, समीक्षकों की सम्मति आपको छपी मिलेगी। उनकी कीर्ति इतनी थी और उनका व्यक्तित्व इतना महान् था कि उनको अपनी किसी पुस्तक का प्राक्कथन किसी बड़े लेखक से लिखवाने की आवश्यकता ही नहीं थी। पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी, डॉ. गोकुलचन्द नारंग आदि आठ-दस विरले व्यक्तियों के प्राक्कथन अथवा सम्मति ही उनके ग्रन्थों पर छपी मिलेंगी।

ऐसी आठ-दस सम्मतियाँ जो आर्यविद्वानों की उनके ग्रन्थों के साथ छपती हैं उनमें 'इस्लाम के दीपक' पुस्तक पर इस विनीत शिष्य की भी सम्मति आपने प्रकाशित कर दी और मुझे सूचना भी न दी गई। मेरे पास तो मूल उर्दू ग्रन्थ था ही। हिन्दी अनुवाद मैंने बहुत बाद में क्रय किया। इस पर मेरी सम्मति दी गई। क्या यह कोई छोटी-सी बात है? ऐसा मेरे निर्माण के लिए ही किया गया। मैं उनका जन्म-जन्मान्तरों तक ऋणी रहूँगा। इसे कृपा मानूँ अथवा उपकार समझूँ? आर्यसमाज के दो प्रकाशकों ने यह ग्रन्थ कमाई के लिये छापा तो कोई सम्पादक भी बन ही गया। बड़ी शान से ग्रन्थ में कांट-छांट करके मेरी सम्मति हटा दी गई। इसे हीन भावना ही

तो कहा जावेगा। पूरा विश्व जानता है कि उपाध्याय जी के हृदय में मेरा स्थान था। वहाँ से मुझे कौन निकाल सकता है? वे जिस लोक में भी गये होंगे मेरी याद उनके हृदय में सुरक्षित रहेगी। इस ऋणी मानस युग की पहचान उनसे थी, है व रहेगी।

उनके स्नेह, कृपा तथा आशीर्वाद के कारण मुझे इतिहास में अनायास ही नये-नये पृष्ठ जोड़ने का गौरव प्राप्त हुआ। आपने सन् १९६८ में अपने देहत्याग से कुछ ही समय पूर्व अपने प्रेमी शिष्य श्रीमान् राधेमोहन जी को एक सैद्धान्तिक पुस्तक के विषय में अपनी सम्मति लिखवाई। यह आप द्वारा लिखित आर्य साहित्य की किसी पुस्तक पर लिखी गई अन्तिम सम्मति है। आप बोलते गये और राधेमोहन जी लिखते गये। उपाध्याय जी की कोटि के विश्वप्रसिद्ध विचारक और साहित्यकार के जीवन के इस अन्तिम लेख- किसी पुस्तक पर आपकी सम्मति का महत्त्व कितना है? यह बताने की आवश्यकता नहीं। किसी भी महापुरुष के जीवन की अन्तिम घटना, अन्तिम लेख अथवा अन्तिम वचनों का महत्त्व निर्विवाद रूप से अद्वितीय ही माना जाता है।

यह पुस्तक इस विनीत द्वारा लिखित 'मौलिक भेद' है। इसका अनुवाद कई भाषाओं में छप चुका है। प्रत्येक लेखक जो साहित्य सृजन के लिए समर्पित हो चुका हो वह ऐसे यश की प्राप्ति को ईश्वरीय वरदान मानता है। मैंने कभी यह सोचा तक नहीं था कि आप अपनी जीवन लीला समाप्त करते हुए भी अपना स्नेह से सना यह प्रसाद मुझे देकर विदा होंगे। मेरा रोम-रोम इस कृपा के कारण आपका ऋणी है। आज साहित्य प्रेमियों व साहित्यकारों को यह जानकारी देते हुए मेरी छाती अभिमान से फूलती है कि श्रद्धेय उपाध्याय जी ने संसार का परित्याग करते हुए जिस पुस्तक पर अपनी मार्मिक समीक्षा की वह मेरे द्वारा लिखित मौलिक भेद है।

पं. भगवद्दत्त जी का विशेष ऋणी कैसे बना - मैं जब - जब दिल्ली किसी सामाजिक कार्य के लिए जाता था तो प्राय: करके पं. भगवद्दत्त जी से कुछ सीखने, कुछ पाने के लिए उनके निवास पर अवश्य जाया करता था। नवम्बर सन् १९६८ के तीसरे सप्ताह मैं दिल्ली गया तो अपने कार्य निपटाकर निश्चित होकर पूज्य पं. भगवद्दत्त जी के दर्शन करने उनके घर पहुँच गया। उनके चरणों में बैठकर उनकी ज्ञान प्रसूता वाणी को बड़ी श्रद्धा से सुनता रहा। विविध विषयों पर जो पूछना था वह साथ-साथ पूछता गया। उस दिन मैंने कुछ ऐसा अनुभव किया मानो कि पण्डित जी को आज मुझे अपने चिन्तन व ज्ञान से लाभान्वित करने की उत्कट इच्छा जागी है।

घण्टों वार्तालाप करके जब मैं उठने लगा तो नमस्ते करके उनसे विदा मांगी तो आपने पूछा, ''अब क्या कार्यक्रम है?'' मैंने कहा, ''रात की गाड़ी से अबोहर लौटूँगा।''

इस पर पण्डित जी ने कहा, ''आज आप नहीं जायेंगे। रात्रि को विचारशील युवकों की एक सभा में मेरा एक विशेष व्याख्यान है। आपकी उपस्थिति उसमें अत्यावश्यक है।''

जीवन में पहली बार ही पण्डित जी ने ऐसा आदेश दिया था कि मेरा भाषण वहाँ सुनना ही होगा। भाषण तो उनके मैंने कई बार सुने, परन्तु प्रत्येक भाषण में स्वेच्छा से श्रोता बनकर गया। आज कुछ विशेष बात है कि पण्डित जी अपने व्याख्यान को सुनने की आज्ञा दे रहे हैं। मैंने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करके कहा, ''अच्छा तार देकर कॉलेज से एक दिन की छुट्टी ले लेता हूँ।'' पण्डित जी प्रसन्न हो गये।

उस दिन रविवार था। मैं ठीक समय पर मन्दिर मार्ग आर्यसमाज में पहुँच गया और श्रोताओं में पीछे-पीछे बैठ गया। न जाने पण्डित जी का व्याख्यान आरम्भ होने से थोड़ा पहले मेरे मन में उनका उस दिन का व्याख्यान नोट करने का विचार गुदगदाने लगा। मैं ऐसा मानता हूँ कि यह कोई ईश्वरीय प्रेरणा ही थी। वैसे सन् १९५२ में आर्यसमाज बाजार सीताराम दिल्ली में भी मैंने उनके

कुछ व्याख्यानों के नोट लिये थे। वे अब भी सब मेरे पास सुरक्षित हैं।

जब मैंने डायरी लेकर उनके व्याख्यान को नोट करना आरम्भ किया तो वेदी पर बैठे हुए पण्डित जी यह समझ गये कि अपने स्वभावानुसार मेरा व्याख्यान नोट कर रहा है। श्रोताओं ने भी मुझे नोट लेते देखा, परन्तु किसी ने उस व्याख्यान के पश्चात् इस विषय में मेरे सामने कोई टिप्पणी नहीं की।

उस दिन पण्डित जी ने मुझे दिल्ली इसी व्याख्यान को सुनने के लिये रोक लिया। इस कारण इसका बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व हो गया। मैं व्याख्यान सुनकर अगले दिन अबोहर पहुँचा तो कुछ ही दिन में इसके शीघ्र पश्चात् पण्डित जी चल बसे। कोई विशेष रोगग्रस्त नहीं हुए। बस यह कहना चाहिए कि चलते-चलते चल बसे। तब मैंने उनके जीवन का वह अन्तिम व्याख्यान साप्ताहिक आर्यगज़ट में प्रकाशित करवा दिया। यह पण्डित भगवद्दत्त जी के जीवन का अन्तिम व्याख्यान था इसकी चर्चा आर्यगज़ट के कुछ पाठक तब मुझसे करते रहे, परन्तु किसी को यह न सूझा कि इसे हिन्दी में लिखकर किसी पुस्तक में देकर चिरस्थायी बना दिया जाता। सब कुछ तो मैं भी नहीं कर सकता। वह डायरी भी अब मेरे पास नहीं। मैं पण्डित जी का स्वयं को बहुत ऋणी मानता हूँ कि आपने अपने जीवन की अन्तिम वेला में रोककर मुझे अपनी अन्तिम वेला के ऐतिहासिक व्याख्यान को सुनने, नोट करते तथा आर्यगज़ट में उसे प्रकाशित करवाने का सौभाग्य प्रदान किया। ऐसी घटनाओं का ईश्वरेच्छा भी तो कुछ कारण अवश्य होता है।

महाकवि बेन्द्रेजी से भेंट - सन् १९६६ में देश का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करने वाले कन्नड़ महाकवि जी से मेरी भेंट आर्यसमाज के इतिहास की एक स्मरणीय घटना है। वर्तमान काल में श्री डॉ. धर्मवीर जी इसकी जानकारी प्राप्त करके गद्गद् हो गये। श्री लाला रामगोपाल जी, पं. भगवद्दत्त जी तथा श्री विजय कुमार जी आर्यप्रकाशक ने इसका यथार्थ मूल्यांकन किया। आर्यसमाज में किस पत्र में और पुस्तक में किसी बड़े आर्यलेखक ने इस विषय पर कभी कुछ नहीं लिखा। यह आर्यसमाज के लिए मन्द भाग्य की ही बात है। इस भेंट को मैं आर्यसमाज के हित में धार्मिक दृष्टि से देखता हूँ। इसे व्यक्तिगत समझना बड़ी घातक भूल है। अत: मैं इसके लिये स्वयं को आर्यसमाज का और कवि जी का ऋणी मानता हूँ।

ऐसी दूसरी घटना नहीं - आर्यसमाज के आधुनिक काल में ऐसी दूसरी घटना नहीं मिलेगी। इसे मैंने पुस्तकों में तो दिया ही है, यहाँ इसे संक्षेप से फिर लिखना मिशन के गौरव व शोभा की दृष्टि से अत्यन्त हितकर है। मैं तब डी.ए.वी. कॉलेज शोलापुर में प्राध्यापक था। उस कॉलेज के कन्नड़ भाषा के प्राध्यापक श्री दीवान जी आर्यसामाजिक साहित्य के अध्ययन के लिए मेरे साथ कॉलेज पुस्तकालय में बैठकर घण्टों दिया करते थे। उन जैसे विरले ही स्वाध्यायशील व्यक्ति मिलेंगे।

एक दिन अत्यन्त आत्मीयता से आपने मुझे कहा, ''यहाँ कर्नाटक के ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्तकर्ता महाकवि बेन्द्रे पधारे हैं। क्या आप उनसे मिलना चाहेंगे? मैं आपके लिए उनसे समय ले लूँगा।'' मैंने कहा मुझे उनके दर्शन कर अपार प्रसन्नता की प्राप्ति होगी।

अगले दिन दीवान जी ने कहा, ''उन्होंने आपके लिए समय दे दिया है। मैं कॉलेज से निवृत्त होकर उनके पास ले चलूँगा।'' मैंने आर्यसमाज शोलापुर के साहित्य बिक्री विभाग से कुछ पुस्तकें उन्हें आर्यसमाज की ओर से भेंट करने के लिये लीं। कॉलेज से हम दोनों के निवृत्त होने से पहले ही कवि जी सोत्साह मुझे मिलने के लिए स्टॉफ रूम में पहुँच गये। यह उनकी विनम्रता तथा महानता ही थी। मैं उनसे भेंट करके अत्यन्त आनन्दित हुआ। उस समय स्टॉफ रूम में बीस से कुछ ऊपर प्राध्यापक तथा वहाँ के दो और डी.ए.वी. कॉलेजों के प्रिंसिपल बैठे थे। वे सब यह देखकर दंग रह गये कि देश का इतना

यशस्वी महाकवि मुझे मिलने के लिए कॉलेज पहुँच गया है। मैं तब एक युवक ही था।

मैंने उनका स्वागत करते हुए उन्हें आर्यसमाज की ओर से वह साहित्य भाव भरित हृदय से भेंट किया। उन्होंने खोला तो उस पैकट में पहली पुस्तक उपाध्याय जी का वेद प्रवचन था। इसे खोलकर कुछ देखकर महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य और वेद की महिमा पर कवि ने अत्यन्त श्रद्धा से अपने उद्गार रखे। पहली बार ही कॉलेज के २५ वर्ष के इतिहास में किसी यशस्वी विद्वान् साहित्यकार ने खुलकर वेद और ऋषि दयानन्द जी पर इतनी श्रद्धा व भक्तिभाव से अपने विचार रखे। कवि जी संस्कृत आदि कई भाषायें जानते थे।

हम दोनों का संवाद होता रहा। सब प्राध्यापक हमारा संवाद सुनते रहे और कोई बीच में बोला ही नहीं। कवि जी ने अगली पुस्तकों में से पं. भगवद्दत्त जी लिखित 'भारतीय संस्कृत का इतिहास' पुस्तक पर पण्डित जी का नाम पढ़ते ही यह वाक्य कहा, "Pandit Bhagwadatta is a great son of Bharat mata." उस कॉलेज के इतिहास में पहली बार प्रकाण्ड वैदिक विद्वान् पं. भगवद्दत्त के व्यक्तित्व व विद्या पर ऐसे विचार रखे। कॉलेज के प्राचार्य मांसभक्षी, नास्तिक डुडेजा का कार्यालय स्टॉफ रूम से एक-दो मिनट की दूरी पर था। लम्बी चली उस भेंट के चलते और भेंट के बाद भी उसने पता न किया कि यहाँ कौन आया था? कैसे आया था? वह प्रिंसिपल कॉलेज कमेटी का कुछ अधिकारी भी रहा था।

सार्वदेशिक में लेख - इस विषय में यह बताना बहुत आवश्यक है कि इस घटना पर मेरा एक ठोस लेख लाला रामगोपाल जी ने तब बड़ी दूरदृष्टि से साप्ताहिक सार्वदेशिक में प्रकाशित करके मुझे बधाई भी दी। पं. भगवद्दत्त जी ने भी मुझे से चर्चा की, परन्तु डी.ए.वी. के सत्ताधारी बाबुओं ने अपना मौन कतई न तोड़ा। इस विषय में और भी बहुत कुछ लिखने को है, परन्तु केवल एक बात लिखकर इस प्रसंग को समाप्त किया जाता है।

श्री डॉ. धर्मवीर जी और मैं हुतात्मा वेदप्रकाश के ७५वें बलिदान पर्व के लिए शोलापुर होकर गुंजोटी जाने लगे तो समाज मन्दिर में वहाँ व्याख्यान देकर जब कार में चलने लगे तो कई आर्यों ने मुझे रोककर पूछा, "आपकी महाकवि बेन्द्रे जी से भेंट कैसे हुई?" मैंने कहा, इस घटना का आपको कैसे पता चला? उन्होंने कहा कवि जी का सुपुत्र यहाँ समाज पहुँचा। वह अपने पिताजी की जीवनी के लिए आपके संस्मरण लेने आया था। उसे बताया गया कि आप तो कई वर्ष पूर्व पंजाब चले गये।

तब धर्मवीर जी को भी इस संवाद से इस घटना व इस घटना के महत्त्व की जानकारी पाकर हार्दिक प्रसन्नता हुई।

मैं स्वंय को महाकवि बेन्द्रे जी, प्रो. दीवान जी तथा इस घटना का आर्यसमाज के लिए महत्त्व समझने वाले सब महानुभावों का ऋणी मानता हूं। चार नामों को रटकर व कुछ घटनाओं की तोतारटन से न तो कोई इतिहासज्ञ बन सकता है और न इससे समाज की शोभा शान बढ़ेगी। आर्यों को अपनी भूल का सुधार करना होगा।

मैं इस लेखमाला में छोटी-बड़ी ऐसी कई घटनाओं की चर्चा करके उन भद्र पुरुषों, परोपकारी ऋषि भक्तों (जिनका मैं ऋणी हूँ) के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करके आर्यसमाज के इतिहास में नई-नई प्रेरक सामग्री जोडूंगा।

(क्रमशः)

वेदन सदन, न्यू सूरजनगरी, अबोहर, पंजाब।

मनुष्यों को चाहिये कि सदा यज्ञ का आरम्भ और समाप्ति को करें और संसार के जीवों को अत्यन्त सुख पहुँचावें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६२

नव वर्ष १ जनवरी को नहीं चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से क्यों मनायें?

श्री कन्हैयालाल आर्य

यूनान मिश्र रोमां सब मिट गये जहाँ से,
कोई बात है कि मिटती हस्ती नहीं हमारी।

यह बात किसी कवि ने कही है तो उस के पीछे उसकी मूल भावना यही थी कि हमारी संस्कृति सबसे पुरानी है। आज विश्व में मुख्यत: तीन संस्कृतियाँ काम कर रही है। ईसाई संस्कृति केवल २०२४ वर्ष पूर्व की है। मुस्लिम संस्कृति १४०० वर्ष पूर्व की है। इससे पूर्व जो संस्कृति थी वह मूल संस्कृति थी, वह संस्कृति थी वेद की संस्कृति। आज पूरा विश्व वेद को सबसे प्राचीन पुस्तक मानता है। हमारी सभ्यता का स्रोत भी सृष्टि का आदिकालीन ग्रन्थ ऋग्वेद है। विश्व के सभी इतिहासकार इस मान्यता से सहमत हैं कि ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसी मान्यता के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ (UNO) ने ऋग्वेद को विश्व सभ्यता की आदि धरोहर स्वीकार कर लिया है। यह वैदिक मान्यताओं की विजय है। वैदिक संस्कृति के अनुसार चैत्र शुक्ल की प्रतिपदा (पहली तिथि) से नववर्ष का प्रारम्भ होता है। यह नववर्ष किसी न किसी रूप में पूरे भारतवर्ष में उत्सव के रूप में मनाया जाता है।

क्या है इस दिन का वैज्ञानिक महत्त्व?

यूरोपीय सभ्यता के ग्रेगोरियन कैलेण्डर के अनुसार पहली जनवरी को नववर्ष मनाया जाता है. लेकिन विक्रमी संवत् के अनुसार चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की पहली तिथि को नव वर्ष को प्रारम्भ माना जाता है। चाहे हम प्रतिदिन के व्यवहार में दिन, सप्ताह, मास और वर्ष की गणना में अंग्रेजी तिथियों का प्रयोग करते हैं, परन्तु आज भी हम धार्मिक अनुष्ठानों एवं मांगलिक कार्यों में विक्रमी संवत् की तिथियों का निर्धारण ही करते हैं।

संसार का प्रत्येक समुदाय अपने यहाँ प्रचलित वर्ष के प्रथम दिन को एक पर्व के रूप में मनाता है। जिस प्रकार ईस्वी वर्ष के अनुसार प्रथम जनवरी को 'न्यू ईयर डे' या नववर्ष के रूप में मनाते आ रहे हैं। भारतीय प्राचीन इतिहास परम्परा में इसको 'सृष्टि सम्वत्सर' कहते हैं। यह मान्यता है कि सृष्टि का प्रारम्भ इसी दिन से हुआ था। इसका अभिप्राय हमें यह समझना चाहिये कि इस दिन से सृष्टि व्यवस्था का प्रारम्भ हुआ था। डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी मनुस्मृति विशेषज्ञ के अनुसार ज्योतिष के ग्रन्थ हिमाद्रि में इस इतिहास को बताने वाला एक श्लोक आया है।

चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्ल पक्षे सम्ग्रन्तु तथा सूर्योदये सति।।

इसका भाव यह है कि सृष्टि की रचना हो चुकी थी अर्थात् सबसे पूर्व परमपिता परमात्मा ने पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश का अपनी ईक्षण शक्ति से निर्माण किया तत्पश्चात् वनस्पति जगत् का निर्माण किया, फिर कीट, पतंग, पक्षी जगत्, पशु जगत् का निर्माण किया तब चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि को ब्रह्मा ने इस मानव जगत् का निर्माण किया अर्थात् एक व्यवस्था का प्रारम्भ समाज में हुआ और उसी दिन सूर्य के उदय के साथ काल की गणना प्रारम्भ हुई।

कुछ लोग सृष्टि का प्रारम्भ एक अरब सतानवें करोड़ उनतालिस लाख उन्नचास हजार एक सौ चौबीस वर्ष पूर्व मानते हैं। परन्तु मानवी सृष्टि का प्रारम्भ एक अरब छयानवें करोड़ आठ लाख त्रैपन हजार एक सौ चौबीस वर्ष पूर्व हुआ। परम पिता परमात्मा यह चाहते थे कि जब मानव इस संसार में आये तब उसके लालन-पालन की सुख-सुविधाओं की पहले से व्यवस्था हो। जिस प्रकार सन्तान के उत्पन्न होने से पूर्व माता के स्तनों में दूध का निर्माण हो जाता है। उसी प्रकार वह जगत् माता यह चाहती थी कि जब में मानवी सृष्टि का निर्माण

करूँ तो उससे पहले पृथ्वी, जल, सूर्यादि ग्रह, वनस्पति जगत् का निर्माण करूँ तभी मैं मानवी सृष्टि को लाऊँ। तभी यह उचित लगता है कि मानवी सृष्टि का प्रारम्भ एक अरब छयानवें करोड़ आठ लाख त्रैपन हजार एक सौ चौबीस वर्ष पूर्व ही सूर्य उदय के प्रथम दिवस को ही हम सृष्टि सम्वत्सर मानते हैं। तब से भारत के लोग इस दिन को एक उत्सव के रूप में मनाते चले आ रहे हैं सचमुच यह दिन कितना सुहावना रहा होगा। जब इस सृष्टि के व्यवहार का एक व्यवस्था के रूप में प्रारम्भ हुआ होगा।

यह सम्वत्सर (ज्ञान का स्रोत) इस बात का संकेत देता है कि विश्व में भारत की संस्कृति, सभ्यता, इतिहास सबसे प्राचीन है। काल गणना का इतना पुराना लेखा-जोखा किसी देश और समाज में नहीं मिलता। इससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि विश्व में ज्ञान का उद्भव और विकास सबसे पहले भारत में ही हुआ था, क्योंकि बिना ज्ञान के न तो कोई दिन, मास, वर्ष, युग आदि का वर्गीकरण कर सकता है और न ही काल गणना की परस्परा को ही सुरक्षित रखा जा सकता है। हम भारवासियों के लिए यह गर्व की बात है और गौरव का विषय है कि हम विश्व की सबसे प्राचीन स्मृतियों को संजोये हुए हैं। सबसे प्राचीन तथ्यों को सुरक्षित रखे हुए हैं। यह नव सम्वत्सर विश्व सभ्यता की अमूल्य धरोहर है। (वसन्त ऋतु से प्रारम्भ) चैत्र शुक्ल की प्रतिपदा वसन्त ऋतु में आती है। वसन्त का प्रभाव न केवल मनुष्यों बल्कि पेड़-पौधों पर भी देखा जाता है। वास्तविकता यह है कि इस ऋतु में सम्पूर्ण सृष्टि में सुन्दर छटा बिखर जाती है। इस ऋतु में हमें सर्दी से छुटकारा मिल जाता है। बल्कि पेड़-पौधों पर हरियाली छा जाती है, पशु-पक्षी भी मस्ती में आ कर झूमने लगते हैं। यह आनन्द क्या हम अंग्रेजी नववर्ष में पहली जनवरी को अनुभव कर सकते हैं। यदि नहीं तो क्यों हम उस तिथि से चिपके हुए हैं? नया सम्वत् अर्थात् भारतीय नववर्ष के कारण हमारे मन में नई उमंगों का संचार हो जाता है जो पहली जनवरी को कभी नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त विक्रमी सम्वत् के मासों के नाम आकाशीय नक्षत्रों के उदय और अस्त होने के आधार पर रखे गये हैं। यह बात तिथियों पर भी लागू होती है। वे चन्द्रमा और सूर्य की गति पर आधारित होते हैं। इस प्रकार विक्रमी संवत् वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है।

ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि जब भारत पर शक जाति का शासन प्रारम्भ हो गया तो उसने इस सम्वत्सर प्रथा को समाप्त कर दिया। बाद के वर्षों में सम्राट विक्रमादित्य ने २०८१ वर्ष पूर्व इसे फिर से प्रारम्भ किया। तब से लेकर आज तक यह तिथि विक्रम संवत् के पहले दिन के रूप में मनायी जाती है। महाराजा विक्रमादित्य न केवल दानी एवं वीर पुरुष थे बल्कि दीन-दु:खियों के सहायक एवं देशभक्त थे। उन्होंने जो सम्वत् प्रारम्भ किया वही आज विक्रमी संवत् के नाम से जाना जाता है। ईरान में इस तिथि को नैरोज़ अर्थात् नववर्ष के रूप में मनाया जाता है।

चैत्र से लेकर बैसाख के मास तक भारत में अलग-अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न मान्यताओं के अनुसार नववर्ष तथा अन्य विशेष उत्सव मनाये जाते हैं। यह दिन जम्मू कश्मीर में नवरेह, पंजाब में बैसाखी, महाराष्ट्र में गुड़ी पड़वा, सिन्धी में चेतीचण्ड, केरल में विशु, असम में रोंगली बिहू आदि के रूप में मनाया जाता है। आन्ध्र में यह पर्व उगादि के नाम से मनाया जाता है। (उगादि) युगादि का अर्थ होता है मानवी सृष्टि रचना का प्रथम दिन। इस प्रकार इस दिन को पर्व के रूप में मनाने की आदि काल से यह परम्परा चली आ रही है।

कुछ लोग इस प्राचीन सम्वत्सर पर सन्देह प्रकट करते हैं। वे विश्वास नहीं करते कि सृष्टि इतनी प्राचीन भी हो सकती है और इतने प्राचीन सम्वत्सर की गणना को सुरक्षित रख पाना कैसे सम्भव हुआ होगा? मैं उन लोगों के सन्देह निवारण के लिए एक प्रमाण देना चाहता

हूँ कि यह काल गणना किस प्रकार सुरक्षित रही है। हम सभी भारतवासी जानते हैं कि प्रत्येक यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठानों एवं विवाह आदि संस्कार के समय पुरोहित यजमान से जो संकल्प कराता है उस समय वह यजमान से 'जम्बू द्वीपे, भरत खण्डे, आर्यावर्त अन्तर्गते' आदि शब्दों का उच्चारण करा कर उस देश, शहर, गाँव, वंश के साथ कालगणना भी बुलवाता है। उसमें युग, मास, वर्ष के साथ प्रहर और पल का भी उच्चारण करवाता है। इस प्रकार दिन प्रतिदिन की उच्चारण परम्परा से यह कालगणना सुरक्षित चली आ रही है। हमारे ऋषि मुनियों ने काल गणना को सुरक्षित रखने का यह बुद्धिमत्तापूर्ण उपाय निकाला है कि उसको हमारे दिन-प्रतिदिन के व्यवहार से जोड़ दिया अन्यथा इसको सुरक्षित रखने का कोई और उपाय नहीं हो सकता, क्योंकि कभी-कभी प्राकृतिक प्रकोपों से, तो कभी मानवीय उथल-पुथल (आक्रान्ताओं द्वारा साहित्य को नष्ट करने) से साहित्य तो नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। यदि केवल साहित्य में यह काल गणना होती तो कभी की नष्ट हो जाती वैसे तो हमारे उपलब्ध साहित्य में भी इस सम्वत्सर का पर्याप्त विवरण मिलता है। आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'ऋग्वेदभाष्यभूमिका' में इस काल गणना का पूरा विवरण दिया है। जिज्ञासु जन इस ग्रन्थ का अवलोकन करके इस विषयक विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

इसी पवित्र दिन पर १० अप्रैल १८७५ को युग पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। भगवान् राम का राज्याभिषेक, महाराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक, आर.एस.एस के संस्थापक डॉ. हेडगेवार का जन्मदिन, महाराज शालिवाहन द्वारा हूणों को परास्त कर दक्षिण भारत में इसी दिन राज्य स्थापित करना आदि घटनाओं का संयोग भी इसी पर्व के साथ आता है।

आईये, यह दिवस अर्थात् चैत्र शुक्ल की प्रतिप्रदा अर्थात् प्रथम दिन (१ अप्रैल २०२४) को पूरे उत्साह के साथ मनायें। यह केवल वर्ष का प्रथम दिवस नहीं है, यह तो भारतीय इतिहास और ज्ञान का गौरव दिवस है, क्योंकि इतनी प्राचीन सभ्यता विश्व में किसी देश और समाज की नहीं है। इसी चैत्र मास की प्रतिपदा (पहली) तिथि को ब्रह्मा जी ने सबसे बढ़िया दिन माना है सृष्टि उत्पत्ति होने के बाद ब्रह्मा ने वेदों से ही लेकर आदिम व्यक्तियों, स्थानों और पदार्थों के नाम रखे थे। आज विश्व में सर्वत्र नये वित्त वर्ष का प्रारम्भ एक अप्रैल अर्थात् नवसम्वत्सर गणना वर्ष के आस-पास ही किया जाता है। तो अर्थशास्त्री भी इसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं। अतः प्रत्येक प्रकार से वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित इस भारतीय परम्परा के विक्रमी संवत् को ही नववर्ष से सम्बोधित करें और विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थों की वैदिक संस्कृति को पुनः जागृत करने के लिए चैत्र शुक्ल प्रतिप्रदा को ही नववर्ष मानें। आईये इस नववर्ष के अवसर पर हम अच्छे संकल्प लेने का विचार करें।

किसी कवि ने इस दिन के लिए निम्नलिखित पंक्तियों को लेखबद्ध किया है -

नववर्ष का आगमन मंगलमय हो,
जीवन में नित नूतन हलचल मंगलमय हो।
मिटे तिमिर, फैले उजियारा कण-कण में,
आशाओं का स्वर्णिम आँचल मंगलमय हो।।

चलभाष - ०९९११९७०७३

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है। (सत्यार्थ प्रकाश सम्मुलास ३)

वेद पर्यटन

पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय

पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय आर्यजगत् के सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी लेखनी से प्रसूत ज्ञानधारा आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी लेखन के समय थी। परोपकारी साभार इसे पुनः प्रकाशित कर रही है

-सम्पादक

पिछले अंक का शेष भाग....

पशुधन- धनों में सब से उत्कृष्ट 'पशुधन' है। अथर्ववेद के सत्रहवें काण्ड सूक्त १ में इस प्रार्थना को १५ बार दुहराया गया है-

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्।।[१९]

हे परमात्मन् (त्वं) आप, (नः) हम को, (विश्वरूपैः पशुभिः) नाना प्रकार के पशुओं से प्रसन्न कीजिये, (परमे व्योमन्) इस विशाल जगत् में (मा=माम्) मुझ को, (सुधाया) अमृत में, (धेहि) रखिये, अर्थात् अनेक पशुओं को देकर मुझ को सुखी बनाइये।

पशुओं की उत्पत्ति का यह वर्णन है-

तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज् जाता अजावयः।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये।।[२०]

उसी ईश्वर ने घोड़ों को बनाया और उन पशुओं को जो दो दांत वाले हैं। गायों, बकरियों और भेड़ों को बनाया, उसी ईश्वर ने वायु में विचरने वाले, वन में फिरने वाले तथा ग्राम में रहने वाले पशुओं को बनाया।

मनुष्यों के साथ पशुओं का साथ है [२१]पशुओं में भी वही जीवात्मा है जो मनुष्यों में। इस प्रकार जीव की दृष्टि से सब प्राणी एक हैं। इसलिए कहा है कि

''मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे''

(यजु. ३६/१८)

अर्थात् हम सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें। मनुष्यों के घरों में जो घोड़े, गधे, गाय, बैल, भेड़, बकरी, कुत्ते पाले जाते हैं वह केवल मनुष्य की सेवा ही नहीं करते, अपितु अपनी संस्कृति का स्तर भी ऊँचा करते हैं। युद्ध के घोड़े स्वामी भक्त बन जाते हैं और स्वामी की रक्षा के लिए अपने प्राण दे देते हैं। गड़रियों के कुत्तों की बुद्धि इतनी तीव्र हो जाती है कि वह भेड़ों की रखवाली कर सकते हैं। दक्षिणी अफ्रीका में किम्बलें (Kimberley) नामक एक नगर है जहाँ खानों में से हीरे निकाले जाते हैं। हीरों की रखवाली के लिए कुत्तों को शिक्षा दी जाती है। चौकीदार को चोर प्रलोभन दे सकते हैं, परन्तु कुत्तों को नहीं। सारांश यह है कि मनुष्य और पशुओं का संसर्ग दोनों के लिए लाभकर है। मनुष्य को अपने कामकाज में सहायता मिलती है और पशुओं की आन्तरिक उन्नति का विकास होता है। इसीलिए यजुर्वेद के पहले मन्त्र में प्रार्थना है- **'यजमानस्य पशून् पाहि'** यजमान के पशुओं की रक्षा कर। क्योंकि पशु धन है। जैव श्रेष्ठ धन है। बिना पशुओं के आप यन्त्रों (कलों) से काम चला सकते हैं, परन्तु जो सभ्यता जड़ यन्त्रों पर ही निर्भर रहती है और पशुओं की उपेक्षा करती है, वह कितनी ही चमकीली और सुविधाजनक क्यों न हो उसमें सब से बड़ा दोष यह है कि वह पशुओं के विकास का अवसर नहीं देती। इसलिए पशुधन की उपेक्षा ठीक नहीं।

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधीभ्यः।।[२२]

हे परमात्मन् (नः पवस्व) हम को ऐसी प्रेरणा कीजिये कि (गवे शम्) हम गायों के प्रति शुभकारी हों, (शं जनाय) अपने नौकर चाकरों के प्रति शुभकारी हों, (शम् ओषधीभ्यः) वृक्षों, लताओं, पौधों की भी उन्नति

करें।

इस मन्त्र में गाय और घोड़े का विशेष उल्लेख है, क्योंकि ये सब से अधिक उपकारी हैं, गाय का नाम धेनु है अर्थात् वह पीने के लिए दूध देती है। इस यौगिक अर्थ में वे सब पशु धेनु हैं जिनका दूध पिया जाता है। भारत में गाय, भैंस और बकरी धेनु हैं। अरब में ऊँटनी भी धेनु है, क्योंकि अरब वाले ऊँटनी का भी दूध पीते हैं। इस प्रकार 'अर्वत्' नाम है घोड़ों का। घोड़े को 'वाजी' भी कहते हैं, जहाँ गधे की सवारी करते हैं वहाँ 'गधा' भी वाजी है। अनड्वान् (अनस् + वह) नाम बैल का है, क्योंकि वह अनस् अर्थात् गाड़ी को खींचता है। वे सब पशु जो गाड़ियों को खीचतें हैं बैल, भैंस, ऊँट, पहाड़ी बकरे ये सब 'अनड्वान्' कहलाने के योग्य हैं। इन की रक्षा करना उसी प्रकार मनुष्य का कर्त्तव्य है जिस प्रकार अपने नौकर चाकरों की।

इन सब पशुओं में गाय को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। 'गो' शब्द के संस्कृत भाषा में कई अर्थ हैं, नीचे का श्लोक पाठकों के मनोविनोद के लिए देते हैं-

क्षीरं चान्नं तथा ज्ञानं, लोकेभ्यो दीयते यया।
गोमाता सा सदा सेव्या, धेनुः पृथ्वी सरस्वती।।

धेनु हमारी माता है, क्योंकि वह दूध पिलाती है, पृथ्वी माता है, क्योंकि वह अन्न देती है। सरस्वती (वाणी) माता है क्योंकि वह ज्ञान देती है, धेनु पृथ्वी और वाणी तीनों के लिए संस्कृत में 'गो' शब्द आता है। अतः 'गोमाता' तो सदा ही सेव्या अर्थात् सत्कार के योग्य है।

इसी आशय का एक वेद मन्त्र भी है-

इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः।
सा नो दुहीयद् यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः।।[२३]

हे इन्द्र और वरुण तुम दोनों, हमारी इस प्रार्थना के प्रेरक हूजिये, जैसे बैल गाय के। यह प्रार्थना हम को इस प्रकार फल देवे जैसे घास खाने वाली बड़ी गाय सहस्रधार दूध से हम को तृप्त करती है।

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत।
इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः।।[२४]

(गावः) हे गौओ, (इह एव एतन) मेरे घर में आओ, (शका इव पुष्यत) भोजन खा-खा कर पुष्ट होओ, (इह एव उत प्रजायध्वं) यहीं बच्चे उत्पन्न करो, (मयि वः संज्ञानम् अस्तु) मुझमें तुम्हारा प्रेम होवे।

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन।।[२५]

(अस्मिन् गोष्ठे) इस गोशाला में, (अबिभ्युषीः) बिना किसी भय के, (संजग्मानाः) साथ-साथ प्रेम से रहो, (करीषिणीः) और यहीं गोबर करो, (सोम्यं मधु बिभ्रतीः) सोम के समान गुणकारी मीठा दूध दो, (अनमीवा उपेतन) और तुम को कोई रोग न हो।

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुष वः सदेम।।[२६]

(गावः) हे गौओ, (मया गोपतिना सचध्वम्) मुझ गोपति के साथ रहिये, (अयं गोष्ठः इह) यहाँ यह गोशाला, (वः पोषयिष्णुः) तुम्हारी पोषण करने वाली हो, (रायस्पोषेण बहुला भवन्तीः) धन धान्य से पुष्ट होकर तुम बढ़ो, (जीवाः) हम जीव लोग, (जीवन्तीः वः उपसदेम) जीती हुई तुम गौओं की सेवा करें।

इस मन्त्र में गोरक्षा और गोरक्षा से धन धान्य की संवृद्धि का कथन है, 'जीवन्तीः वः' इन शब्दों से स्पष्ट है कि गायों को यज्ञ में मारने या मांस खाने का संकेत तक नहीं है। वैदिक संस्कृति में किसी प्राणी को कष्ट पहुँचाने का प्रसंग नहीं है। इसका मूल मन्त्र है-सभी का कल्याण और सभी का विकास। मनुष्य को यह अधिकार नहीं कि अपने स्वार्थ के लिए किसी की हिंसा करे। **'अहिंसा परमो धर्मः।'**

कृषि- पशुधन से उतर कर दूसरा 'कृषि' है, ऋग्वेद

में आया है-

एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम्।[२७]

(एकः इन्द्रः) अद्वैत परमात्मा में, (द्वे पृथिवीम् उत द्याम्) पृथिवी और द्यौ दोनों को, (समीची वसुमती आ पप्रौ) वसुमती अर्थात् धन देने वाली बनाया।

यहाँ पृथिवी और द्यौ दोनों लोकों को वसुमती या धन देने वाली कहा है। जब दैव बरसता है तो पृथिवी अन्न उत्पन्न करती है, परन्तु मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने ज्ञान द्वारा भूमि से कृषि करके अन्न उत्पन्न करे। पशुओं के समान केवल दैव पर निर्भर न रहे।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नयौ।।[२८]

(देवेषु सुम्नयौ) देवों के प्यारे (धीराः कवयः) बुद्धिमान् और ज्ञानी लोग, (सीरा युञ्जन्ति) हल को जोतते हैं। (पृथक् युगा वितन्वते) और बैलों के कन्धों पर जुआ लगाते हैं।

इस मन्त्र में खेती करने वालों को 'कृषि', 'धीर' और 'देवों' के प्यारे कहा है, क्योंकि संसार भर के लिए खाना उत्पन्न करना श्रेष्ठ और ज्ञानी पुरुषों का ही काम हो सकता है। पृथिवी वसुमती है, उसमें वसु या धन भरा पड़ा है, परन्तु बिना परिश्रम और ज्ञान के अन्न उत्पन्न नहीं होता। जंगली अशिक्षित मनुष्यों के पास लम्बे-चौड़े भूमि भाग पड़े हैं, जिनमें किसी ने हल नहीं चलाया। वहाँ के लोग पृथिवी से खाना नहीं ले सकते। जब यही भाग शिक्षित विज्ञानवेत्ताओं के स्वत्व में आ जाते हैं तो न केवल उन देशों के लिए ही अपितु अन्य देशों के लिए भी खाना सुलभ हो जाता है।

वेद कहता है-

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम्।
विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमा यवन्।।[२९]

(युनक्त सीरा) हल को जोतो (युगाः वितनोत) जुओं को सीधा करो। (कृते योनौ) खेत में लीकें बनाओ। (इह बीजं वपत) और उसमें बीज बोओ। (विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्) ईश्वर की कृपा से हमारा भाग्य भरपूर हो। (नः नेदीय इत् सृण्यः पक्वम् आ यवन्) और हमारी दरांती के पास पका हुआ अन्न आवे।

अर्थात् यदि हम लोग ज्ञानपूर्वक हल चला कर भूमि को जोतेंगे और लकीरों में बीज बोयेंगे तो ईश्वर की कृपा से अन्न उपजेगा और हम अपनी दरांती (हँसिया) से पके अन्न को काट सकेंगे।

ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १०१[३०] में इसी आशय को कुछ शब्दान्तर के साथ वर्णन किया है-

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन् नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्।। (मन्त्र ३)

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया।। (मन्त्र ४)

निराहावान् कृणोतन सं वरत्रा दधातन।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम्।। (मन्त्र ५)

मन्त्र 3 में 'गिरा' और 'श्रुष्टिः' दो शब्द हैं। 'गिरा' (वाणी) ज्ञान का द्योतक है और 'श्रुष्टि' अन्न का। ज्ञानी ही अच्छे किसान हो सकते हैं। समाज में किसानों का पद ऊँचा होना चाहिये, क्योंकि भूमि पर लौकिक अन्नदाता वही हैं।

५वें मन्त्र में (आहावान् निः कृणोतन) अर्थात् जलाशय बनाने का विधान है, जहाँ गाय बैल जल पी सकें। (उद्रिणम् अवतम्) जलों से भरे हुए कुण्ड, कुएँ या तालाब। 'वरत्र' को हिन्दी में 'वर्त' कहते हैं। इनसे झावों को बाँध कर खींचने के लिए पानी निकालते हैं। तात्पर्य यह है कि वेदों में खेतों के जोतने, बोने, सींचने और फसल काटने का उपदेश है।

यजुर्वेद अध्याय १८ के १२वें मन्त्र में भिन्न-भिन्न अन्नों के नाम दिये हैं-

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।

यहाँ व्रीहि (चावल), यव (जौ), माष (उड़द), तिल (मुद्ग), मूँग, खल्व, प्रियङ्गव, अणु, श्यामाक, नीवार आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के चावल, गोधूम (गेहूँ) मसूर आदि अन्नों के उत्पत्र करने का विधान है। यह (यज्ञेन कल्पताम्) अर्थात् यज्ञ द्वारा उत्पन्न होंगे। यज्ञ का अर्थ यहाँ कृषि यज्ञ है। कृषि या खेती करना यज्ञ है। यज्ञ का अर्थ केवल आग जला कर उसमें आहुति देना नहीं है। उपजीविका के लिए पदार्थों का उत्पन्न करना भी यज्ञ है। इस अर्थ में हर किसान यजमान या याज्ञिक है। राजा जनक को पौराणिक गाथाओं में शुनासीर या हल जोतने वाला कहा है। यह शुनासीर शब्द वेदों से लिया गया है।

शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै।[३१]

(शुनासीरा अर्थात्) हल और हल चलाने वाले लोगों, (हविषा तोशमानाः) उपजीवन के पदार्थों से प्रसन्नचित्त होकर, (ओषधीः) पौधों को, (सुपिप्पलाः) फलवान्, (कर्तम्) करो, (अस्मै) प्रजाजन के लिए।

यहाँ शुनासीरा, तोशमाना कर्तम् ये द्विवचनान्त हैं। कृषि कार्य और कृषक दोनों को सम्बोधन किया है। शुन आर्थात् हल और 'सीर' या उसका फलक ये दोनों कृषि कार्य के प्रतीक हैं। खेती को सर्वोत्तम बताना प्राचीन वैदिक शिक्षा है। क्योंकि समस्त मानव जीवन का भौतिक भार कृषि पर है।

कृषि-यज्ञ का ही पूरक खनिज पदार्थों की प्राप्ति के लिए खनन यज्ञ है। देखो-

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहञ्च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।[३२]

यहाँ (अश्मा) पत्थर, (मृत्तिका) मिट्टी (गिरयः) चट्टानें, (पर्वताः) पहाड़ी पत्थर, (सिकता) बालू, (वनस्पतयः) पहाड़ी लकड़ियाँ (हिरण्य) सोना, (श्याम) शायद चाँदी, (लाह) लोहा, सीसा, (त्रपु) जिस्त का वर्णन है। ये पदार्थ यन्त्र आदि के निर्माण में काम आते हैं।

व्यापार-

इन्द्रमहं वणिजं चोदयामि स न एतु पुर एता नो अस्तु।
नुदन्नरातिं परिपन्थिनं मृगं स ईशानो धनदा अस्तु मह्यम्।
ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि।।[३३]

यहाँ 'वणिज' या व्यापारी को इन्द्र कहा है। व्यापार के लिए यातायात की सुविधा चाहिये। मार्ग में डाकू (परिपन्थिन) और व्याघ्र आदि घातक जन्तु (मृग) न मिलें। (ये बहवो पन्थानः) जो बड़े मार्ग (द्यावापृथिवी अन्तरा) पृथिवी और द्युलोक अर्थात् अन्तरिक्ष में हैं जहाँ (देवयानाः) वायुयान चलते हैं (ते मा पयसा घृतेन जुषन्तां) वे मुझे जीवन की सुविधाएं दूध घी देवें। (यथा क्रीत्वा) जिससे मैं व्यापार करके (धन) धन को (आहराणि) ले सकूँ।

यहाँ व्यापार मण्डलों और व्यापारी वायुयानों का उल्लेख है। 'वणिज' अर्थात् बनिया इन्द्र है और उसके वायुयान देवयान हैं। 'क्रीत्वा' अर्थात् क्रय-विक्रय करके ही व्यापारी एक देश का माल 'दूरस्थ' देश में पहुँचा सकते हैं और इसी से धन मिलता है। चार वर्षों में वैश्य मानव जाति का वह विभाग है जिसका सम्बन्ध उत्पत्ति (कृषि, कला, कौशल आदि) यातायात और विनिमय तथा धन प्राप्ति के अन्यान्य विभागों से है।

शिक्षा, चिकित्सा, कला कौशल, आदि के विषय में बहुत सामग्री है जो यहाँ स्थानाभाव से नहीं दी जा सकती।

टिप्पणी :

१. (यजुर्वेद ९।२३।१)

२. पुरोहित=पुरः+हित।'हित''धा' धातु का'क्त' प्रत्ययान्त है। आगे रखा हुआ (foremost placed), अर्थात्

अगुआ या नेता।

३. (यजुर्वेद ९/४०)

४. ऋग्वेद १।१७०।२

५. पौराणिक देवमाला में इन्द्र को स्वर्ग का राजा और मरुतों को प्रजा कहा है। वस्तुतः वेद स्वर्ग के देवताओं के लिये नहीं है। वे तो इस लोक के मनुष्यों के लिये ही हैं। अतः इन्द्र और मरुतों का यह संवाद राष्ट्र के राष्ट्रपति और प्रजाजनों के लिये ही समझना चाहिये।

६. अथर्ववेद १२।१।७

७. (अथर्ववेद १२।१।१)

२. (अथर्ववेद १२।१।५)

३. (यजुर्वेद २२।२२)

१०. स्वामी अभेदानन्द जी स्वाधीनता संग्राम में पं. नेहरू जी के साथ कभी एक ही जेल में थे। स्वामी जी से इस मन्त्र की व्याख्या सुनकर नेहरू जी बहुत प्रभावित हुए परन्तु आर्य धर्म व दर्शन की प्रशंसा करने का उनमें नैतिक साहस व संस्कार नहीं था। तब श्री स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि शब्दों का प्रयोग नहीं किया, क्योंकि नेहरू जी इन से चिढ़ते थे। स्वामी जी ने कहा था आदर्श राष्ट्र वह नहीं है जिसमें उत्तम शिक्षक, उत्तम रक्षक, उत्तम पोषक व उत्तम सेवक न हों। 'जिज्ञासु'

११. यजुर्वेद ३१।११

१२. पूज्य उपाध्याय जी ने एक स्थान पर लिखा है कि पश्चिमी वेतनभोगी विद्वानों ने जान-बूझकर वर्ण का अर्थ रंग करते हुए यह भ्रान्ति फैलाई कि आर्यों ने रंग के आधार पर वर्ण व्यवस्था चलाई। आर्य गोरे थे और यहाँ के मूल निवासी काले। काले लोगों को शूद्र बना दिया गया। यह कल्पना एक शुद्ध गप्प है। यदि गोरे काले के आधार पर वर्णव्यवस्था होती तो दो ही वर्ण होते फिर चार वर्ण कैसे हो गये? क्या ब्राह्मण काले नहीं होते? 'जिज्ञासु'

१३. ऋग्वेद १।१।३

१४. अथर्ववेद ७/६०/१

१५. अथर्ववेद ७/६०/२

१६. अथर्ववेद ७/६०/१४

१७. अथर्ववेद १४/१/२७

१८. ऋग्वेद ७/५६/१२

१९. यह विनय इस सूक्त के मन्त्र संख्या ६ से चौबिसवें तक पन्द्रह बार की गई है। 'जिज्ञासु'

२०. अथर्ववेद १९/६/१२,१४

२१. पशुओं, पक्षियों, कीड़ों, मकोड़ों व जलचरों की अन्धाधुन्ध हत्या से इस धरती पर मानव जीवन के लिए एक भयंकर संकट खड़ा हो गया है। अब सारे वैज्ञानिक लुप्त हो रहे जीव-जन्तुओं व वनस्पतियों की रक्षा के लिए यत्नशील हैं। घड़ियालों, सिंहों, बाघों, कछुओं तक की चिन्ता की जा रही है। वेद के सिद्धान्त समझ में आ रहे हैं। 'जिज्ञासु'

२२. सामवेद १/१/२

२३. ऋग्वेद ४/४१/५

२४. अथर्ववेद ३/१४/४

२५. अथर्ववेद ३/१४/३

२६. अथर्ववेद ३/१४/६

२७. ऋग्वेद ३/३०/११

२८. अथर्ववेद ३/१७/१

२९. अथर्ववेद ३/१७/२

३०. यजुर्वेद अध्याय १२, मन्त्र ६८, ६७ में भी यही है।

३१. अथर्ववेद ३/१७/५

३२. यजुर्वेद १८/१३

३३. अथर्ववेद ३/१५/१,२

महर्षि दयानन्द : जीवन परिचय

– **प्रो. नलिनी पारीक**

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे।।

(गीता ४.७.८)

जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब साधु-पुरुषों का उद्धार करने के लिए, पापकर्म करने वालों के विनाश के लिये और धर्म की स्थापना करने के लिए युग-युग में महान् विभूतियाँ इस धरा पर जन्म लेती हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती ऐसे ही महान् युगपुरुष थे जिन्होंने विविध, मतों, सम्प्रदायों, महन्तों, मठाधीशों, मौलवियों, पादरियों की अज्ञानता से पवित्र आर्यावर्त की गौरवशाली सभ्यता जो धूल-धूसरित हुई थी, उसे पुनजीर्वित, परिमार्जित और परिष्कृत किया। यह ऐसा समय था जब मिथ्या संस्कारों का विषम विषैला कीड़ा जातीय जीवन की जड़ों में घुस गया था। ईसाई धर्म की बाढ़ अबोध प्रजा को प्लावित किए जा रही थी। पश्चिमी विचार, पुरातन आर्य सभ्यता को, आर्य संस्कारों को, आर्य धर्म-कर्म को और रीति-नीति को धुन के सदृश खोखला किए जा रहे थे। उस समय स्वामी जी ने महान् बीड़ा उठाया और सार्वजनिक हित के लिए वेदों को आधार बनाकर गहरी गवेषणा और अकाट्य युक्तियों से, तर्क के तीरों से दूसरे पन्थों का अधूरापन दिखाकर आर्य धर्म के सर्वकल्याणकारक स्वरूप का दिग्दर्शन कराया।

ऐसे महान् कार्य करने वाले विराट् व्यक्तित्व के जीवन पर एक नज़र डालते हैं कि कैसे उन्होंने समस्त व्यक्तिगत सुखों को तिलांजलि देकर, कठोर कष्ट सहन कर अपने आपको समाज के हित के लिए तत्पर किया तथा सत्य और धर्म की रक्षा के लिए प्राणों का भी बलिदान किया।

स्वामी दयानन्द का जन्म सं. १८८१ में काठियावाड़ के मोरबी राज्य के टंकारा ग्राम में ब्राह्मणकुल में कर्षन जी के यहाँ हुआ था। ब्राह्मण कुल में जन्मे स्वामी जी का नाम तब मूलशंकर था। उनकी शिक्षा-दीक्षा ५ वर्ष की आयु से प्रारम्भ हुई, आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार, गायत्री एवं सन्ध्या उपासना विधि सिखाई गई। रुद्राध्याय, तदनन्तर यजुर्वेद की शिक्षा दी गई। चौदह वर्ष की अवस्था में अन्य वेदों का भी कुछ-कुछ अध्ययन किया। व्याकरण के भी छोटे-छोटे ग्रन्थ पढ़ लिये। पिताजी पक्के शिवोपासक थे। माघ वदी १४ को शिवरात्रि का व्रत करवाकर दयानन्द से मन्दिर में जागरण कराया। शिवरात्रि की रात उनके लिए बोधरात्रि थी। शिव की मूर्ति पर चूहे को दौड़ते देख मूर्तिपूजा से उनकी आस्था उठ गई। संवत् १८९६ में जब वे १६ वर्ष के थे तब १४ वर्षीय भगिनी के निधन और उसके पश्चात् १९वें वर्ष में प्रिय चाचा की मृत्यु ने उन्हें हिलाकर रख दिया। मुक्तिमार्ग की खोज की इच्छा और वैराग्य ने उनके हृदय को आन्दोलित कर दिया। पण्डितों ने योगाभ्यास का उपाय बताया तो वे गृहत्याग के लिए तत्पर हो गये। माता-पिता उन्हें विवाह बन्धन में बाँधने की तैयारी करने लगे। लेकिन वैरागी दयानन्द गृहत्याग के लिए अनुकूल अवसर देखकर बाईस वर्ष की अवस्था में अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए के निकल पड़े।

अहमदाबाद, बड़ौदा तत्पश्चात् नर्मदातट पर बसे चाणोदकर्नाली में २४ वर्ष दो मास की आयु तक सन्तों के सत्संग में, शास्त्र चर्चा में, योगविद्या की प्राप्ति में, आत्मिक आराधन, चिन्तन और ध्यान में समय व्यतीत किया। दण्डी स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती ने काफी तर्क के बाद हाथ में दण्ड अवलम्ब कराके उनका नाम दयानन्द

सरस्वती उद्घोषित किया और संन्यास की दीक्षा दी। भिन्न-भिन्न स्थानों का पर्यटन करते हुए महात्माओं, विद्वानों, योगियो और सन्तों के शुभसंग से कृतज्ञ भाव से शिक्षा ग्रहण करते रहे। वैशाख सं. १८१२ में कुम्भ के मेले में हरिद्वार पधारे। वहाँ से सच्चे-ज्ञानी महात्माओं की खोज में विकट जंगल में, कंटाकाकीर्ण मार्ग में, घोर शीत में, हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में घूमते रहे। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल एवं सांख्य शास्त्र के अतिरिक्त विज्ञान और योग पर लिखी सभी पुस्तकें मिथ्या हैं।

स्वामी श्री विरजानन्द का विमल यश श्रवण कर कार्तिक सुदी २ संवत् १९१७ को स्वामी जी मथुरा में प्रविष्ट हुए और उनके शिष्य बने। ८१ वर्ष के प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी असाधारण स्मरण, धारणा शक्ति, आर्षग्रन्थों के अद्भुत ज्ञान, व्याकरण विद्या के धनी थे। ऐसे बिरले गुरु से स्वामी जी ने ढाई वर्ष तक शिक्षा प्राप्त की। लौंग की गुरु दक्षिणा देकर गुरु से आशीर्वाद प्राप्त किया। भारत देश में दीनहीन जन अनेकविधि दुःख पा रहे हैं, जाओ उनका उद्धार करो। मत-मतान्तरों के कारण जो कुरीतियाँ प्रचलित हो गई हैं, उनका निवारण करो। आर्य सन्तान का उपकार करो। ऋषि शैली प्रचलित करके वैदिक ग्रन्थों के पठन-पाठन में लोगों को प्रवृत्त करो। गंगा-यमुना के निरन्तर गतिशील प्रवाह की भाँति लोकहित कामना से क्रियात्मक जीवन बिताओ। प्रिय पुत्र, गुरुदक्षिणा में यही वस्तु मुझे दान करो। शिष्य दयानन्द ने उनके एक-एक वचन का प्राणपण से अक्षरशः पालन किया।

सं. १९२० में ३५ वर्ष की अवस्था में स्वामी जी आगरा पधारे और अपने प्रचार के महान् कार्य का आरम्भ किया। उनकी व्याख्या निराली थी। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' के बदले 'सर्व अधर्मान् परित्यज्य' पढ़ना चाहिये, क्योंकि इसमें 'अ' कार का लोप हुआ है।

चैत्र सं. १९२४ में उन्होंने हरिद्वार में कुम्भ मेले में 'पाखण्ड-खण्डिनी' पताका लहराई। स्वामी जी उत्तरप्रदेश और विशेष रूप से काशी में लम्बे समय तक वास करते हुए वेदप्रचार करते रहे। प्रतिमापूजन, भागवत पुराण, तीर्थ, व्रत, कण्ठी, शुद्धि, अवतारवाद, भूतप्रेत, गंगास्नान, सूतक, राम और कृष्ण जैसे महापुरुषों की लीला, वेश्याप्रथा का कुव्यसन, देशवासियों की अकर्मण्यता इन सब बुराइयों का उन्होंने जोर-शोर से निर्भयता से खण्डन किया।

यज्ञोपवीत, सन्ध्योपासना, पंचमहायज्ञ, गायत्री मन्त्र, संस्कृत भाषा में वार्तालाप, नमस्ते के अभिवादन का मण्डन किया और वेदों का डंका बजा दिया। स्वामी जी देवभाषा संस्कृत में ही व्याख्यान करते थे, परन्तु सं. १९२९ में कलकत्ता प्रवास के दौरान केशवचन्द्र सेन के कहने पर उन्होंने लोकभाषा हिन्दी में व्याख्यान देना प्रारम्भ किया तथा उनके ही कहने पर मात्र कौपीन के स्थान पर पूर्ण वस्त्र पहनने प्रारम्भ किये।

ब्रह्मचर्य, योगाभ्यास से चमकता मुखमण्डल, सत्य, निर्भयता, ज्ञान के तेज से युक्त प्रखर वाणी, विमल, विशुद्ध अंतःकरण के उच्च भावों से संचालित श्रेष्ठ व्यवहार, वीतरागी, सुदृढ संकल्प के धनी स्वामी जी की सभाओं में सहस्त्रों की संस्था में लोग उपस्थित रहा करते थे। ब्राह्मण, मुसलमान, ईसाई, पण्डित, मौलवी, पादरी, कलेक्टर तथा कई सत्ताधारी लोग भी उनके उपदेशों का लाभ लेते। शंका-समाधान होता। एक ओर जहाँ उन पर सर्वस्व न्योछावर करने वाले भक्त थे, वहीं उन पर ईंट, पत्थर, मिट्टी, रोड़े बरसाने वाले उपद्रवी भी थे। कई बार तो साँप और जूते भी फेंके गए थे। कई बार उन पर विष के विषम प्रयोग हुए। उनके विरोधी कई बार लठैतों को, कभी पहलवानों को, कभी तलवारों के साथ नौकरों को उनका वध करने भेजते, परन्तु हर बार मुँह की खानी पड़ती। कई बार तो स्वामी जी की हुंकार से ही वे डरकर भाग जाते। हितैषियों की चिन्ता पर वे कहते- मेरी रक्षा तो सदैव सर्वत्र परमात्मा देव करते हैं, इसलिये मैं निर्भय हूँ। परमात्मा ही सच्ची सरकार है। शास्त्रार्थ में ओजस्विनी

कथनशैली, अकाट्य युक्ति, प्रभूत-पुष्ट प्रमाण तथा समझाने की विशिष्ट शैली से वादी के मुँह से ही उसकी भूल स्वीकार करवा लेते। १८ घण्टे तक, कई बार २४ घण्टों तक समाधिस्थ रखने वाले स्वामी जी लोगों के प्रच्छन्न मनोरथों को जान लेते थे। उनके प्राण लेने वालों के इरादे भी जान जाते थे पर स्वामी जी के हृदय में क्षमा अपार थी। अपकार करने वाला, दुर्वचन करने वाला, विरोधी वृत्ति वाला भी उनके कृपाभाव से, सुजनता के बर्ताव से, वाणी के अनिर्वचनीय प्रभाव से पश्चात्ताप कर उनका भक्त बन जाता। फर्रुखाबाद में एक गुण्डा लठैत उनका काम तमाम करने के निश्चय से पहुँचा। कड़क कर स्वामी से बोला - क्या तुम मूर्ति को ईश्वर नहीं मानते। स्वामी ने कहा- ईश्वर का स्वरूप जानते हो? वह बोला- ईश्वर, सच्चिदानन्द, भक्त-वत्सल, दयालु देव है, सर्वत्र परिपूर्ण है। स्वामी जी बोले तुम्हारी समझ की मैं प्रशंसा करता हूँ। अब तुम ही इन गुणों को मन्दिर की मूर्तियों के साथ मिलाओ। समझाने के इस ढंग से उसने लठ्ठ फेंक दिया और उनका भक्त बन गया। ऐसी अनगिनत घटनाएँ हैं, वे कभी अपने अपराधियों को दण्ड दिलवाना पसन्द नहीं करते थे। कहते थे- मैं तो मनुष्यों को बँधवाने नहीं प्रत्युत छुड़वाने आया हूँ। स्वामी जी भक्तों को समझाते हुए कहते- धर्मोपदेशक को तो भूमि के सदृश सहनशीलता सम्पादन करनी चाहिये। द्वेष को मिटाने का साधन शान्ति धारण करना है। किसी कर्णकटु वचन और घोर कठोर कर्म से संन्यासियों के अंत:करण कलुषित नहीं हुआ करते। किसी अवहेलना और अवज्ञा से उनकी भद्र चिन्तन भावना में भेद नहीं आता।

स्वामी जी के दृष्टिकोण की विशालता और उदारता आज के परिप्रेक्ष्य में असम्भव लगती है। वे पादरी स्कॉट महाशय के कहने पर गिरजाघर में भी जाकर व्याख्यान दे सकते थे और ब्रह्मसमाजियों के उत्सव में भी उपस्थित हो सकते थे। स्पष्टवादिता में वे किसी का भी पक्षपात नहीं करते थे। धर्मसंग्राम में केसरी बन जाने स्वामीजी धर्म के नाम पर बदला लेने की भावना को अभद्र मानते थे।

मुम्बई के गिरगाँव मुहल्ले में डॉक्टर माणिकचन्द की वाटिका में चैत्र सुदी ५ सं. १९३२ विक्रमी शनिवार को सायं काल में स्वामी जी ने आर्यसमाज की शुभस्थापना की। उस समय आर्यसमाज के २८ नियम बनाए गए। सं. १९३४ को लाहौर में आर्यसमाज के नियमों का नूतन संस्कार कर आर्यसमाज की नींव प्रबल चट्टान पर रख दी। इस बार स्वामी दयानन्द ने स्वयं आर्यसमाज के १० नियम बनाये। उन्होंने पंजाब प्रान्त में आर्य धर्म का प्रचार किया। इस महान् कार्य में होने वाले कष्टों के लिए वे कहते- मैंने आर्यसमाज का उद्यान लगाया है, इससे मेरी अवस्था माली की तरह है। पौधों में खाद डालते समय राख और मिट्टी माली के सिर पर भी गिर जाती है।

स्वामी जी की सिद्धान्तवादिता, नीतिमत्ता देखिये - रुड़की आर्यसमाज की सभा में सभासद् बनने के बाद ही उन्होंने अपना उपदेश दिया। सभा में हठ और दुराग्रह नहीं करना चाहिये। अपने पक्ष की पुष्टि में चाहे जितनी युक्तियाँ दो, परन्तु प्रकृति और हृदय में ऐंठन न आने दो। किसी बात को पकड़कर इतना नहीं खींचना चाहिए कि भ्रातृभाव का तार ही टूट जाए। बहुमतानुसार जो मत उत्तीर्ण हो जाए, उस पर हट नहीं करना चाहिये। अंतरंग सभा के कार्यों को प्रकाशित करना उचित नहीं है।

स्वामी जी अत्यन्त निराभिमानी और निर्लेप थे। लाहौर के साधारण अधिवेशन में शारदा जी ने प्रस्ताव किया कि आर्यसमाज के संस्थापक को पदवी से विभूषित किया जाए। इस पर स्वामी जी ने कहा- मैंने नया पंथ चलाकर गुरुगद्दी का मठ नहीं बनाया है। परम सहायक नियत किये जाने की बात पर वे बोले - परम सहायक तो वह जगदीश्वर ही है।

स्वामी जी में संकीर्णता और संकुचितता का लवलेश भी नहीं था। उन्होंने सर्वहित को ही सर्वोपरि माना।

उनके अनुसार यदि सब मतों के विद्वान् पक्षपात छोड़कर सर्व तन्त्र सिद्धान्त को स्वीकार करें, जो-जो बात सबके अनुकूल है और सबमें सत्य है उनको ग्रहण करके और जो बातें एक-दूसरे से विरुद्ध पाई जाती हैं, उनको त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें, वर्तावें, तो जगत् का पूर्ण हित हो जाए। विद्वानों के विरोध से ही अविद्वानों में विरोध बढ़कर विविध दु:खों की वृद्धि और सुखों की हानि होती है।

सामाजिक सुधार में स्वामी जी ने ब्रह्मचर्यावस्था को अत्यावश्यक बताया। वर्णाश्रम मर्यादा को गुणकर्म के अनुसार माना। शूद्रों को वेदाधिकार देते हुए लिखते हैं- जैसे परमात्मा ने पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाए हैं, वैसे ही वेद भी सब मनुष्यों के लिए प्रकाशित किए हैं। स्त्री जाति के लिए भी वे ब्रह्मचर्य धारण और विद्या का ग्रहण आवश्यक मानते थे। पूर्ण स्वतन्त्रता और समानता के पक्षधर थे। शास्त्राधिकार एवं द्विजपद प्रदान किया। वे चाहते थे कुछ विदुषी स्त्रियाँ मिलकर मातृमण्डल का निर्माण करें और मातृशक्ति को सर्वगुणसम्पन्न बनाएँ। स्वामी जी ने सर्वसाधारण के लिए अनिवार्य शिक्षा पर बल दिया। वे निरन्तर लोगों को उद्यमशील बने रहने के लिए प्रेरित करते थे। स्वामी जी ने सभाएँ संगठित करके गो-रक्षा का भाव जागृत किया। संगठन का नाम 'गो-रक्षण और कृषि सुधार' रखा। स्वराज्य और स्वायत्त शासन का ओजपूर्ण भाषा में समर्थन किया। स्वामी जी राजधर्म और राजनीति के भी धुरन्धर पण्डित थे। स्वामी जी की निर्भीक समालोचना के बावजूद राजकर्मचारी राजा-प्रजा धर्म के व्याख्यान करवाते थे। स्पेडिङ्ग महाशय ने तो उन्हें राष्ट्रनीति पर व्याख्यान देने को आमन्त्रित किया और धन्यवादपूर्वक उनकी प्रशंसा की।

स्वामी जी, आचार, विचार, भाषा, वंश में नख-शिख स्वदेशी थे। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में स्वामी जी ने राजस्थान में प्रचार किया। सं. १९३८ भादो सुदी १५ को स्वामी जी ब्यावर पधारे और बारह-तेरह दिन वास किया। सं. १९३९ में स्वामी जी ने उदयपुर में परोपकारिणी सभा स्थापित की। तेईस सदस्यों की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन, यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्व का दान किया। श्री राणा उनकी निष्ठा में पूर्ण आर्य बन गए थे। सं. १९४० में स्वामी जी महाराज जोधपुर गए जो उनके देहत्याग का कारण बना।

ये देश का दुर्भाग्य था कि नख-शिख लोककल्याण की भावना से परिपूरित, तन-मन-धन सहित मनसा-वाचा-कर्मणा परोपकार में समर्पित महायोगी को द्वेष-दुर्भावना से कालकूट जहर देकर उनके जीवन का अन्त करने का घृणित काम हुआ। महाराणा यशवन्तसिंह के यहाँ वाराङ्गना नन्हीं जान की उपस्थिति पर स्वामी जी ने उन्हें फटकार लगाई- केसरी की कन्दरा में ऐसी कल्मष कलुषित कुक्कुरी के आगमन का क्या काम है? वैरविष से व्याकुल नन्हीं जान ने रसोइये से मिलकर स्वामी जी को दूध में कालकूट हलाहल दिलवाया। स्वामी जी समझ गए थे कि उन पर विष प्रयोग किया गया है, परन्तु उन्होंने किसी से नहीं कहा। घोर अपराध करने वाले जगन्नाथ रसोइये से अपराध स्वीकार कराके उसे धनराशि देकर शीघ्र प्रस्थान कर नेपाल राज्य में जा छिपने को कहा। धन्य है वह महात्मा जिसने प्राणहर्ता को प्राणदान दिया। घातक जहर के कारण उन पर कोई औषधि असर नहीं कर रही थीऔर इसी उन्हें पहले कारण आबूरोड और फिर भक्तों के आग्रह से उन्हें अजमेर ले जाया गया। मुसलमान वैद्य पीरजी ने देखते ही कह दिया कि इनको किसी कुलकण्टक ने विष देकर अपनी आत्मा पर कालिख लगाई है। उनकी वज्रसंगठित और वज्रसमान सुदृढ देह कृशकाय हो गई थी। प्राणान्तक पीड़ा के बावजूद उनकी सहनशीलता, धैर्य और शान्ति देखकर सब दंग थे। शान्तचित्त, गम्भीर ध्वनि से उन्होंने वेदपाठ किया। उनकी मृत्यु की अवस्था देखकर गुरुदत्त जैसे नास्तिक आस्तिक हो गए। उन्होंने देखा एक ओर तो

प्रभु पलंग पर बैठ कर प्रार्थना कर रहे हैं और दूसरी ओर व्याख्यान देने के वेश में सुसज्जित कमरे की छत से लगे बैठे हैं। वेदज्ञान के अनन्तर स्वामी जी परमात्मा की प्रार्थना करने लगे, गायत्री जप करते हुए समाधिस्थ हुए, फिर दिव्य ज्योति का विस्तार करते हुए बोले 'परमात्मा देव! तेरी इच्छा पूर्ण हो।' इन शब्दों के साथ ही ब्रह्मर्षि ने अपने प्राण को प्रणवनाद के साथ बाहर निकाल इहलीला का अन्त किया। सं. १९४०, कार्तिक अमावस्या, मंगलवार, सायं छह बजे आर्यजगत् ही नहीं समग्र भारत का सूर्य अस्त हो गया।

निर्माणमोहा जितङ्गदोषा,
अध्यात्मनित्या निनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुख दुःख संज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययं तत्।।

(गीता १५.५)

ऐसे स्वामी जी ब्रह्मलीन होकर मुक्त विचरते परम पद को प्राप्त होते हैं। हम स्वामीजी के आचार, विचार, व्यवहार को आत्मसात् करने का प्रयास करें।

पूर्व विभागाध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग,
सनातन धर्म राजकीय महाविद्यालय, ब्यावर।
मो. ९४६२७३७१५९

*** निवेदन ***

कीर्तिशेष आचार्य धर्मवीर जी ने अपने दानदाताओं के सहयोग से ऋषि उद्यान में निरन्तर चलने वाले ऋषि लंगर की व्यवस्था की थी, जो सतत संचालित हो रही है। इसमें ऋषि उद्यान की वृहद् भोजनशाला में **ऋषि उद्यान में निवास करने वाले योगसाधकों, संन्यासियों-वानप्रस्थियों, ब्रह्मचारियों व आचार्यों के भोजन, दुग्ध, फल इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।**

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों, विद्वानों, दर्शनार्थियों इत्यादि के निवास तथा भोजनादि की व्यवस्था इसके अन्तर्गत संचालित की जाती है।

आर्य दानदाता-परिवारों के सहयोग से ही यह अतिथि-यज्ञ सम्भव हो पा रहा है। अतः हम सभी आर्य परिवारों का दायित्व एवं कर्त्तव्य है कि हम इस यज्ञ में होता बनकर निरन्तर दान-रूपी आहुति प्रदान कर पुण्य के भागी बनें। विभिन्न संस्कारों एवं अन्य शुभावसरों पर अपनी दान-रूपी आहुति देना न भूलें, ताकि यह लोकोपकारी अतिथि यज्ञ निरन्तर चलता रहे।

इस अतिथि यज्ञ हेतु आप **५१००/-(पाँच हजार एक सौ रुपये) प्रतिवर्ष** भेजकर अपना सहयोग प्रदान कर अनुग्रहीत करें।

ओम्मुनि — **प्रधान**

कन्हैयालाल आर्य — **मन्त्री**

(परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित)

योग–ध्यान स्वाध्याय शिविर

संवत् २०८१, ज्येष्ठ शुक्ल चतुर्थी से दशमी तक, तदनुसार १० से १६ जून २०२४

इस योग-साधना शिविर में योग सम्बन्धी विषयों का वैदिक-दर्शनों के द्वारा ज्ञान करवाया जायेगा, उससे सम्बन्धित जिज्ञासाओं का समाधान व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी उन्नति का मापदण्ड बताया जायेगा। यह शिविर अवश्य ही आपकी साधना की उन्नति में विशेष साधन बनेगा, जिससे कि मानव जीवन के मुख्य व चरम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तरोत्तर काल में आप अपने निकट अनुभव करने लगेंगे।

प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक शिविरार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।

२. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य-सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।

३. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।

४. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि-उद्यान परिसर में ही की जायेगी।

५. बाह्य-वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे- समाचार-पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखने आदि पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।

६. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।

७. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन-सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।

८. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

९. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ- परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) कार्यालय से (०१४५-२९४८६९८, मो. ८८९०३१६९६१, ८८२४१४७०७४, ९९१११९७०७३) से सम्पर्क कर शिविर से पूर्व शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता-बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्-पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार अतिरिक्त भुगतान से की जाती है। ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं, शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने-ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक), लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गम्भीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। लौटने का रेल-आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने-पीने की वस्तुएँ साथ न लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क २००० रु. मात्र जमा करना होगा। पृथक् कक्ष का शुल्क २००० रु. अतिरिक्त देय है। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर के प्रारम्भ दिनांक से एक दिन पहले सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर में पहुँच जाना आवश्यक है, क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर **दूरभाष :** ०१४५-२९४८६९८,
मो.नं. ८८९०३१६९६१, ८८२४१४७०७४, ९९११९९७०७३

– : मार्ग : –

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेलवे स्टेशन व बस स्टेण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

आर्यवीर एवं आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर

स्थान - ऋषि उद्यान, अजमेर, राजस्थान

आर्य वीर दल आवासीय शिविर - दिनांक - २६ मई से ०१ जून २०२४ तक

आर्य वीरांगना दल आवासीय शिविर - दिनांक - ०२ जून से ०८ जून २०२४ तक

नमस्ते जी। आप सभी को सूचित किया जाता है कि आर्य वीर व आर्य वीरांगना श्रेणी का प्रशिक्षण शिविर ऋषि उद्यान अजमेर में आयोजित किया जाएगा ।

शिविर की विशेषता - १. शिविर आर्यवीर दल अजमेर एवं परोपकारिणी सभा अजमेर के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित होगा । इसमें राष्ट्रीय स्तर के शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाएगा।

२. शिविर में सहयोग राशि ८००/- रुपये रहेगी।

३. सभी को गणवेश में रहना अनिवार्य होगा । गणवेश यदि उपलब्ध नहीं है तो शिविर स्थल से क्रय कर सकते हैं।

४. इस शिविर में सैनिक शिक्षा का विशेष प्रशिक्षण होगा।

५. आर्य वीर शिविर स्थल पर २६ मई २०२४ व आर्य वीरांगना शिविर में ०२ जून २०२४ को सायंकाल ५ बजे तक आना अनिवार्य है।

६. शिविर में भाग लेने वाले आर्य वीर अपनी आने की सूचना **श्री नन्दकिशोर आर्य** के चलभाष-९३१४३९४४२१, **श्री कमलेश पुरोहित** को चलभाष संख्या ९८२८१८०१९७ व **श्री वासुदेव आर्य**-चलभाष संख्या ९४६०११२०९२ एवं आर्य वीरांगना की सूचना **श्रीमती सुलक्षणा शर्मा** को चलभाष संख्या ९४१३६९५४८९, **श्रीमती कुमुदिनी आर्या**-चलभाष संख्या ९८२८१८०१९७ पर अवश्य देवें । धन्यवाद ।

विश्वास पारीक-जिला संचालक-९४६००१६५९०

आर्य वीर दल एवं आर्य वीरांगना दल अजमेर

परोपकारिणी सभा, अजमेर

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
ऋग्वेद संहिता	९००	५००	४००
अथर्ववेद संहिता	५५०	४००	३००
ऋग्वेद भाष्य नवम भाग	४००	३००	२२५
पञ्चमहायज्ञ विधि	६२	२०	१५
वैदिक संध्या मीमांसा	१०७	४०	३०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-

डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

(VEDIC PUSTKALAYA , AJMER)

बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

0008000100067176

IFSC - PUNB0000800

UPI ID :

0510800A0198064.mab@pnb

आवश्यक सूचना

परोपकारी के सुधि पाठकों से निवेदन है कि कृपया अपना नाम व पते के साथ दूरभाष संख्या भी अंकित करावें ताकि परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रमों से सम्बन्धित सूचनाएँ आपको दूरभाष पर मैसेज के माध्यम से भेजी जा सकें।

परोपकारिणी सभा दूरभाष संख्या - ८८९०३१६९६१

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है।

दूरभाष - **8890316961**

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से ३० मार्च २०२४ तक)

१. श्रीमती मिनाक्षी मेहता, गुरुग्राम २. श्री राधेश्याम खण्डेलवाल, अजमेर ३. श्री गौरव लढ्ढा, जयपुर ४. श्री जयसिंह गहलोत, जोधपुर ५. श्री आदित्य मुनि व श्रीमती कंचन गहलोत, अजमेर ६. श्री विश्वनाथ चौरसिया, पन्ना ७. श्री विजय/श्रीमती सुनीता, रस्तोरा, नई दिल्ली ८. श्री अमरचन्द माहेश्वरी, अजमेर ९. श्रीमती कौशल्या, देवी, अजमेर १०. श्री कुलदीप/श्री प्रेम गुप्ता, जम्मू ११. आर्य केन्द्रीय सभा, करनाल १२. श्री सामेश कुमार, चरखी दादरी १३. श्री सुधीर कुमार आर्य, सहारनपुर १४. श्री अजय कुमार आर्य, सहारनपुर १५. श्री उमेश आर्य, दिल्ली कैन्ट १६. श्री आर्य संदीप विजोल, पानीपत १७. श्री ईश्वरसिंह आर्य, हिसार १८. श्री मुमुक्षानन्द, अजमेर १९. श्रीमती कमला बेन, पूर्वी मुम्बई, २०. श्री विश्राम हरजी पटेल, पूर्वी मुम्बई, २१. श्री मेवजी रतन सी पटेल, पूर्वी मुम्बई २२. श्रीमती जया बेन हरजी लाल पटेल, मुम्बई २३. श्री श्रीकान्त, गाजियाबाद २४. श्री रमेशचन्द भट्ट, अजमेर २५. श्री उमेश शर्मा, जयपुर २६. मै. स्वास्तिकॉम चैरिटेबिल ट्रस्ट, अमरावती २७. श्रीमती सूर्या कुमारी, नई दिल्ली २८. कर्नल अनिलसिंह, नई दिल्ली २९. श्री शान्ति श्रद्धानन्द शास्त्री ३०. श्री अमित व श्रीमती सुमन माहेश्वरी, थाणे ३१. सुश्री अरुणा गौड, अजमेर ३२. शास्त्री केशवदेव आनन्द, अजमेर ३३. श्री सत्यम आर्य, दिल्ली ३४. श्री हरिओम, भिवानी ३५. आचार्य यशवीर आर्य, रोहतक ३६. श्री रणवीर सिंह, हरिद्वार ३७. वैद्य ओमपाल सिंह आर्य, नोयड़ा ३८. श्री जयभगवान्, बहरोड ३९. श्री अशोक कुमार पठानिया, गाजियाबाद ४०. श्रीमती रामेश्वरी देवी काकांणी, जयपुर ४१. श्री बाबूलाल चौहान, अजमेर ४२. श्री जितेन्द्र आर्य, नई दिल्ली।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएंगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(०१ से ३० मार्च २०२४ तक)

१. श्री रूपलाल, अजमेर २. श्री वल्लभभाई माहेश्वरी, अजमेर ३. मै. सैन्चुरियन स्टोन, किशनगढ़ ४. श्रीमती सुशीला शर्मा, अजमेर ५. श्री दीपक जोशी, किशनगढ़ ६. श्री आदित्य मुनि व श्रीमती कंचन गहलोत, अजमेर ७. श्रीमती दयाबेन पाण्ड्या, मुम्बई ८. श्रीमती तृप्ति बेन सुरेश आर्य, नवी मुम्बई ९. श्रीमती अंजू बेन हर्षत आर्य, नवी मुम्बई १०. श्रीमती लालावती हेमचन्द, मुम्बई ११. श्रीमती कविता, मेरठ १२. आचार्य कुलदीप, मेरठ १३. श्रीमती वर्षा रंगवानी, अजमेर १४. श्रीमती रमा सुभाषचन्द नवाल अजमेर १५. श्री मंजूर नेगी, दिल्ली १६. श्री रमेश ठकरान, गुरुग्राम १७. श्री चन्द्रनारायण अग्रवाल, अजमेर १८. श्री आनन्द देव भारवाड़िया, उदयपुर, १९. श्री मुमुक्षानन्द, अजमेर २०. श्री वात्सल्य शर्मा, अजमेर २१. श्री शेखर प्रजापति, अजमेर २२. डॉ. केसरसिंह उदावत, अजमेर।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अत: परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष **'सत्यार्थप्रकाश'** के साथ **'महर्षि का जीवन-चरित्र'** एवं **'आर्याभिविनय'** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **५०० से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

yono SBI

SBI Payments

MERCHANT NAME : PROPKARNI SABHA
UPI ID : PROPKARNI@SBI

SCAN & PAY

BHIM
SBI Pay
BHIM UPI

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

ओ३म्

परोपकारिणी सभा, अजमेर के तत्वावधान में

योग–ध्यान–स्वाध्याय शिविर

10 से 16 जून 2024

स्वामी आशुतोष परिव्राजक
ध्यान

आचार्य चन्द्रेश
आत्मनिरीक्षण

डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'
महर्षि दयानन्द और योग

आचार्य अंकित प्रभाकर
योग दर्शन

के पावन सानिध्य में जीवन को शान्त व सुखद बनाने के लिए आध्यात्मिक प्रशिक्षण का अवसर

स्थान : ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

सम्पर्क : 0145-2948698, 8890316961, 8824147074, 9911197073

कन्हैयालाल आर्य	ज्योत्स्ना धर्मवीर	ओममुनि
मन्त्री	संयोजक	प्रधान

आर जे/ए जे/40/2024-2026 तक
प्रेषण : १५-१६ मई २०२४
आर.एन.आई. ३९५९/५९
अनन्य ईश्वर भक्त, योगेश्वर
महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती
की
२०० वीं जयन्ती के अवसर पर
परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित
दिव्य एवं भव्य
अन्तर्राष्ट्रीय ऋषि मेला
१७-२० अक्टूबर २०२४
सादर आमन्त्रण
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१